

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका



वर्ष : ४६ अंक : ७ आषाढ़-श्रावण वि.सं. २०७८ जुलाई, २०२२ सहयोग राशि- अठारह रुपये पृष्ठ-२८ RNI 43602/77 ISSN No.2581-981X

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में आई जज़्बे वाले युवाओं की टोली



हमारा अब तक का अनुभव यही रहा है कि स्वैच्छिक संस्थाओं में भी लोग कुछ पाने के लिए ही आना चाहते हैं। अपना कुछ देने के लिए नहीं। मगर पिछले दिनों हमें नया खुशनुमा अनुभव हुआ कि सभी ऐसे नहीं हैं। हमने यह भी जाना कि आज की किशोर और नौजवान पीढ़ी वैसी नहीं है जैसी कुछ ज्यादा समझदार लोग सोचते हैं और उसे चित्रित करते हैं।

इस पीढ़ी की नई कोंपले जो अभी अपनी कॉलेज शिक्षा में व्यस्त है उस दिन कुछ लेने नहीं कुछ देने के लिए राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में आई थीं। समिति परिसर में जहां पर्यावरण शिक्षण के तहत औषधीय तथा अन्य देशी वनस्पतियों का उपवन विकसित किया हुआ है छात्र-छात्राएं अपना श्रम देने आये थे। बिना किसी पूर्व अनुभव के जिस प्रेम से उन्होंने सवेरे-सवेरे करीब तीन घंटों तक अपने हाथों से खरपतवारों को निकाला, भूमि को झाड़ा-पोंछा और कचरे को एक जगह एकत्र किया उससे वह उनके लिए ही नहीं हमारे लिए भी स्मरणीय दिन बन गया। श्रम के आनंद के लम्हों को शब्द देना मुश्किल है।

इसी परिसर में कुछ माह पहले समिति के अध्यक्ष रमेश थानवी (अब दिवंगत) के नेतृत्व में नन्हें बच्चों की अनोखी 'आनंदशाला' लगी थी जिसमें बच्चों ने स्वयं अपना पाठ्यक्रम रचा और खेलते कूदते पेड़ों पर चढ़ते-उतरते पढ़ना लिखना सीखा।

समिति में श्रमदान करने आये युवाओं के लिए भी वह आनंदशाला ही थी। मानो सभी अपने अपने बचपन में चले गये हों। कुछ ने तो काम निबटाने के बाद, हाथ-मुंह धोकर पेड़ पर चढ़ने का कौशल भी आजमाया।

प्रमुख शिक्षण संस्थान 'इंडिया इंटरनेशनल कॉलेज' के नाट्य विभाग की शिक्षिका मूमल तंवर तथा हरिदेव जोशी पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्व-विद्यालय के एडजंक्ट प्रोफेसर हिमांशु व्यास भी अपने छात्रों के साथ शिक्षा के इस प्रशिक्षण संस्थान में श्रमदान के लिए आए थे।❑

श्रम की सुरीली शिक्षा

जून की आठ तारीख की भोर राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के उपवन में पक्षियों के कलरव के साथ ही चुस्त कपड़ों में एक दूसरे का अभिवादन करते युवाओं की चहचहाहट भी प्रवेश कर रही थी।

जेठ में बादल घिर आए हों जैसे वैसे ही बागवान सीताराम जी की प्रसन्नता उमड़ घुमड़ रही थी। और क्यों न घुमड़े दो, पांच, आठ और देखते ही देखते तेरह चौदह युवा श्रमदान के लिए इकट्ठा हो गये थे और सीताराम जी से फ़ावड़ा खुरपी माँग रहे थे।

दरअसल समिति में लगे औषधीय पौधों का विस्तार होना है पर खरपतवार ने एक बड़ा इलाका अनुपयोगी कर दिया था। और ये कॉलेज विद्यार्थी व शिक्षक उन्हें जड़ से उखाड़ने आए थे।



अपनी क्यूबन हैट में सीताराम जी युवाओं को जंगली पौधों को पहचानना व निकालना सिखाने लगे। मिलीफावड़ा तो दिया खुरपी चला रही थी। खच्च-खच्च, खद-खद की आवाज़ों के साथ खरपतवार और पत्तियों के ढेर लगने शुरू हो गए। सचिव राजेंद्र बोड़ा जी और दिनेश पुरोहित जी को भी उजाड़ कोनों से कचरा बीनते देख युवा और जोश से भर गए।

सिर पर दुपट्टे बंध गए। पसीने की बूँदें श्रृंगार जैसे झिलमिलाने लगी। उखड़ती घास की सुगंध से मैना पास आने लगी। करीब टेनिस के कोर्ट जितना क्षेत्र युवाओं की मेहनत से साफ़ चमकने लगा।

नौ बजे रसोईये मुकेश जी उपवन में जामुन के घने पेड़ तले सूजी का गर्मागर्म नाश्ता, चाय, बिस्कुट ले आए। कूकती कोयल को दरख्तों के पत्तों में खोजते हुए सब ठण्डी मिट्टी पर ही बैठ खा पी रहे थे।

बाद में समिति के ऑडिटोरियम में सबने अपने-अपने अनुभव साझा किए। ❑

– मूमल तंवर

वाणी

विद्या ददाति विनयं,
विनयाद् याति पात्रतम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति,
धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।

शिक्षा विनम्रता देती है, विनम्रता पात्रता देती है, पात्रता धन देती है और धन धार्मिकता देता है। धार्मिकता से सुख मिलता है। ❑

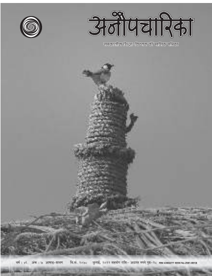
समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा–चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ४९ अंक : ७ आषाढ़–श्रावण वि.सं. २०७८ जुलाई, २०२२

क्र म



आवरण : हिमांशु व्यास
चित्र में नागौर के आकाश को निहारती चिड़िया अनायास ही मूंझ और घोचों वाली झोंपड़ी की सुन्दर बणगत की ओर हमारी दीठ ले जाती है।



राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७–ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–३०२००४
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई–मेल : raeajaipur@gmail.com

शिक्षक की अनवरत शिक्षा...



शिक्षक को पाठशाला कहना भी सही है। यह एक ऐसी पाठशाला है जो कि सत्य के प्रयोगों पर आधारित है। एक शिक्षक को नवाचार, और नए-नए प्रयोगों के लिए सजग रहना होता है। शिक्षक की सजगता और उत्सुकता शिक्षा को नये आयाम और नई दिशा देती है। शिक्षक की शिक्षा भी अनवरत शिक्षा है। यानी शिक्षक होना एक अंतहीन और अनवरत प्रक्रिया है। शिक्षा में सीखना और सिखाना दोनों निहित है।

यह सीखना-सिखाना शिक्षक को उसका अनुभव सिखाता है। शिक्षकों की शिक्षा केवल डिग्री प्राप्त करने से ही पूरी नहीं हो जाती। शिक्षकों को, माता-पिताओं को और अभिभावकों को बालकों का मनोविज्ञान समझना जरूरी है। आवश्यकता इस बात की है कि कोई भी पढ़ा-लिखा व्यक्ति पढ़ाने की योग्यता रखता हो, उसे हर समय, हर स्तर पर नया ज्ञान प्राप्त करने को उत्सुक और उद्यत रहना चाहिए। और आवश्यकता इस बात की भी है कि शिक्षक को स्वयं स्वेच्छा से प्रयत्नशील रहना चाहिए। एक शिक्षक को नया ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा ही उसे अच्छे से अच्छा शिक्षक बना सकती है।

हमारी शिक्षा प्रणाली ऐसी हो जो हमारे आसपास की परिस्थितियों से संबंध रखे। विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा दी जाए जिससे उन्हें यह विवेक करना आए कि क्या चीज उन्हें ग्रहण करनी चाहिए और क्या नहीं? आज की जरूरत यह है कि अपने विद्यार्थियों को विवेक सिखलाएं।

सच्ची शिक्षा का काम शिक्षा पाने वाले बालकों की क्षमता को, उनकी संभावनाओं को बाहर लाना है। यह काम केवल जानकारियां देने से और ज्ञान देने भर से पूरा होने वाला नहीं है। इस तरह की जानकारी बालकों को जड़ बना देती है और हरेक बालक की मौलिकता को ही कुचल देती है।



आत्मनिर्भरता और श्रम का आदर शिक्षा प्रणाली के दो अत्यंत महत्वपूर्ण विषय हैं, जिन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। ऐसी शिक्षा जो मनुष्य को मनुष्यत्व प्रदान करे। ❑ **प्रेम गुप्ता**

दर्शन–सरिता और गाँधी





❑
सुधांशु मिश्र

लेखक मानवीय और सामाजिक सरोकार रखने वाले वरिष्ठ पत्रकार हैं। ❑ सं.

बहुत से लोग यह मानते हैं कि यदि आप अनीश्वर– वादी नहीं हैं, तो आप परिवर्तन के संवाहक– समर्थक, शोषण व ग़ैर–बराबरी विरोधी और ग़ैर–साम्प्रदायिक अथवा धर्म–निरपेक्ष हो ही नहीं सकते। यह समझ प्रमाणपत्र देने की हद तक सनकी और झक्की हो जाती है। इससे ज़्यादा भ्रामक और नासमझी की मान्यता शायद हो ही नहीं सकती। हमारे सामने सबसे बड़ा उदाहरण महात्मा गाँधी का है। विश्व इतिहास की पिछली कई सदियों में गाँधी से ज़्यादा प्रामाणिक रूप से धार्मिक, समाज सुधारक, परिवर्तनवादी और ग़ैरबराबरी का विरोधी और ग़ैर–सांप्रदायिक (धर्म–निरपेक्ष) व्यक्ति शायद ही हुआ है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक और उदाहरण देना समीचीन होगा। और वह उदाहरण है महान साम्यवादी नेता और क्यूबा की क्रांति के नायक फ़िदेल कास्त्रो के नेतृत्व में हुए आंदोलन का। इस क्रांति में क्यूबा के संगठित चर्च की सकारात्मक भूमिका को झुठलाया नहीं जा सकता। दोनों ने मिल कर क्रान्ति कारी परिवर्तन के लिए किस क़दर एक सफल सयुक्त मोर्चा बना कर काम किया था – यह इतिहास में दर्ज़ है।

ऐसी ही एक गलत समझ मन्दिर को लेकर है। कुछ लोगों की मान्यता है कि यदि आप मन्दिर– विरोधी हैं तो आप अधार्मिक हैं, दक़ियानूस, प्रतिक्रियावादी और ईश्वर विरोधी हैं, अतः अधार्मिक हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके नेतृत्व में चला आर्य–समाज का आंदोलन मंदिर विरोधी ही था। भारत में, विशेष तौर पर उत्तर और पश्चिमी भारत में , आर्य समाज ने समाज सुधारों की दिशा में, ख़ास कर शिक्षा – उसमें भी स्त्री–शिक्षा– के लिए, बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किये । यह अलग़ बात है कि कालांतर में इस आंदोलन में ठहराव आ गया, एक हद तक विकृति भी ।

एक अन्य और संवेदनशील मान्यता है कि यदि आप अनीश्वरवादी हैं तो आप अधार्मिक हैं। यह मान्यता तो भारतीय दार्शनिक परम्परा के प्रति अज्ञानता का द्योतक है। इस मान्यता के लोगों को इस बात का ज़रा भी पता नहीं है कि भारतीय दर्शन की एक महान चिंतनधारा है सांख्य, जिसका ज़िक्र गीता में भी बड़े विस्तार से किया गया है ; वहां वह ज्ञान–निष्ठा का वाचक है । मैक्समूलर के अनुसार अद्वैत वेदांत के बाद भारत (हिन्दुओं) का प्रमुख दर्शन सांख्य है। सांख्य के प्रवर्तक कपिल मुनि

कहे जाते हैं। कपिल का नाम उपनिषद् (श्वेता. ५ /२), भगवद्गीता (१० /६) और महाभारत के शांतिपर्व में और अन्यत्र बड़े आदर के साथ लिया गया है। गीता के ही अनुसार सिद्धों में कपिल मुनि भगवान् की विभूति हैं। भागवत पुराण में (३/२४ -२५) कपिल को चौबीस अवतारों में गिना गया है।

भारत में भौतिक जगत की वैज्ञानिक व्याख्या की कोशिश कम ही हुई है। ये कोशिशें या तो उपेक्षित रहीं या असहिष्णुता का शिकार हो कर लुप्तप्राय हो गईं। इन कोशिशों में जैनों और **वैशेषिक** (दर्शन की एक धारा) का परमाणुवाद भौतिक जगत की एक महत्वपूर्ण व्याख्या करता है। दूसरी महत्वपूर्ण व्याख्या सांख्य दर्शन में पायी जाती है। **सांख्य दर्शन विवेक या ज्ञान को विशेष महत्त्व देता है।** सांख्य का रास्ता ज्ञान -मार्ग है। सांख्य दर्शन जगत का मूल कारण प्रकृति को मानता है ईश्वर को नहीं।

दरअसल मतों में इतनी भिन्नता के दो महत्वपूर्ण कारण है। पहला, समय के साथ दार्शनिकों में धर्म और ईश्वर की बदलती गई अवधारणाएं। और दूसरा, भारतीय दार्शनिक परम्परा की दो अप्रमाणिक पूर्व-मान्यताओं - मोक्ष और पुनर्जन्म - को ज़रुरत से ज़्यादा महत्त्व देना। इसके परिणामस्वरूप भौतिक यथार्थ की अवहेलना होती रही। यह अवहेलना अति पर पहुँच कर तिरस्कार और घृणा के अतिरेक तक पहुँच गई। यही कारण था कि लोकायतों के दर्शन (भारतीय भौतिकवादी / नास्तिक दार्शनिक परम्परा) को हिंसक तरीक़ों से समूल नष्ट कर दिया गया।

भारतीय दर्शन की परम्परा विशेष और उससे प्रभावित जन-चेतना में असहिष्णुता की एक अति-प्रबल धारा बहती रही है, जिसकी तुलना ईसाई परम्परा में आई विकृति से की जा सकती है। युरोप के विचारकों को धर्म के परम्परागत अनुशासन में इसलिये अरूचि हो गयी कि मध्ययुगीन ईसाई धर्म ने स्वतंत्र चिन्तन पर सख़्त प्रतिबन्ध लगाये; उसने दार्शनिकों और वैज्ञानिकों को भी स्वतंत्र चिन्तन करने से रोका। इसकी प्रतिक्रिया स्वरुप वहाँ के आधुनिक दार्शनिक दर्शन को धर्म से अलग़ रखना चाहते आये हैं और धार्मिक-आध्यात्मिक मान्यताओं को मात्र श्रद्धा की चीज़ समझते हैं।

लेकिन भारत में, विशेषतः उन्नतिशील युगों में, धर्म दार्शनिक चिन्तन पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सका।

ऊषा को ऋत् के नियमों का पालन करने वाला कहा गया है। ऋत् वास्तव में 'सत्य का नियम' है, क्योंकि सत्य शाश्वत व नित्य है। जिन नियमों से यह विस्तृत ब्रह्माण्ड बंधा हुआ है, संचालित है, उनका ऋग्वेद में नाम ऋत् है। ऋत् को सबका मूल कारण माना गया है।

इसके विपरीत, यहाँ दर्शन ने धर्म और धर्म-ग्रंथों को अपने तेज से प्रकाशित ही किया। धर्म ग्रन्थ बतलाते हैं कि जीवन का ध्येय मोक्ष है, लेकिन मोक्ष का स्वरुप और उसके उपाय क्या हैं, यह दर्शन बतलाता है। यही नहीं, प्रत्येक दर्शन मोक्ष- तत्व की अलग़ व्याख्या देता है। यह उल्लेखनीय है कि जहाँ मोक्ष की अवधारणा के सम्बन्ध में भारतीय दर्शनों के अलग़ -अलग़ मत हैं, वहाँ वे साधना अर्थात मोक्ष की ओर बढ़ने वाले सन्त-जीवन के सम्बन्ध में, बहुत कुछ एक-सा मत रखते हैं, लेकिन कई मतभेद वहाँ भी हैं। उदाहरण के लिये, हिन्दू धर्म मोक्ष प्राप्ति के लिये ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग, ज्ञान-कर्म समुच्चय मार्ग, भक्ति मार्ग, इन अनेक मार्गों का प्रतिपादन करते हुए निर्देश भी करता है।

भारतीय साहित्य में धर्म शब्द का उल्लेख सबसे पहले ऋग्वेद में मिलता है। इसका प्रयोग प्रकृति के नियमों के लिए हुआ है। वैसे **ऋग्वेद** का मूल शब्द तो है **ऋत्**, जो सृष्टि व ब्रह्माण्ड के भौतिक नियमों के लिए प्रयुक्त हुआ है। ये नियम अपरिवर्तनीय हैं। प्रकाश और रश्मियों के जो नियम पृथ्वी पर हैं, वे ही सूर्य पर हैं और उन्हीं नियमों से संचालित वे दूरस्थ लोक (गैलेक्सी) हैं, जहाँ से प्रकाश को हम तक पहुँचने में करोड़ो वर्ष लग जाते हैं। सूर्य, चंद्र और ऊषा को ऋत् के नियमों का पालन करने वाला कहा गया है। ऋत् वास्तव में 'सत्य का नियम' है, क्योंकि सत्य शाश्वत व नित्य है। जिन नियमों से यह विस्तृत ब्रह्माण्ड बंधा हुआ है, संचालित है, उनका ऋग्वेद में नाम ऋत्

है। ऋत् को सबका मूल कारण माना गया है। देवताओं से प्रार्थना की जाती थी कि वे हम लोगों को ऋत् के मार्ग पर ले चलें तथा अनृत (जो ऋत् या सत्य न हो) से दूर रखे अर्थात् हम सब को प्रकृति के नियमों का-सत्य का- पालन करना चाहिए। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इसे सुप्रीम लॉ कहा, तो पूर्व-वैदिक ऋषियों ने इसे ऋत् कहा।

कालांतर में, कब ऋत् शब्द का स्थान धर्म ने ले लिया, और कब और कैसे धर्म पुराण में बदल कर सम्प्रदाय अथवा रिलिजन में बदल गया; मानो, न तो जन -साधारण को और न ही विद्वानों को इसका पता लगा।

धर्म शब्द संस्कृत की धृ धातु से बना है, जिसका अर्थ है धारण करना। कुछ विद्वानों ने इसका अर्थ सम्हालना भी किया है। जो धारण करे, जो टेक बन कर किसी दूसरी वस्तु को रोके, वह धर्म हुआ। अतः ऋत् शब्द की जगह सृष्टि के अखंड नियमों के लिए धर्म शब्द का प्रयोग बढ़ा , क्योंकि इसका एक कारण यह था कि यह अर्थ साधारण समझ के आदमी को आसानी से समझ में आता है। वैसे भी धर्म का यह अर्थ समझ के ऊँचे धरातल पर है, जैसाकि ऋग्वेद और उसके बाद के वैदिक साहित्य में इसका प्रयोग हुआ है।

जिस चीज़ को हमें व्यवहार में लाना चाहिए या धारण करना चाहिए वह धर्म है, जिसे धारण नहीं किया जा सकता, वह धर्म नहीं है। जैसे, प्रेम को हमें धारण करना चाहिए, इसलिए वह धर्म है; लेकिन नफरत को धारण नहीं करना चाहिए, अतः वह धर्म नहीं है।

जगत में व्यवस्था है और प्रत्येक पदार्थ एवं जीवित प्राणी एक अटल नियम द्वारा संचालित है। यह नियम अँधा नहीं है, क्यों कि जीवित प्राणियों के आचरण को किसी अन्य नियम द्वारा संचालित नहीं किया जा सकता .... तो फिर समस्त जीवन का संचालक वह नियम ईश्वर ही है। नियम एवं नियामक एक ही हैं।

धर्म और ईश्वर की अवधारणा का जो यह लगभग चार-पाँच हज़ार वर्षों का ऊबड़-खाबड़ सफ़र है उसे अत्याधुनिक सन्दर्भों और सामाजिक अर्थों में सफलतापूर्वक सार्थक बनाने का जो दार्शनिक प्रयास मोहनदास करमचंद गाँधी ने किया, वह अभूतपूर्व है। उन्होंने सत्य के प्रति निष्ठा और प्राणिमात्र के प्रति प्रेम को परीक्षण द्वारा व्यावहारिक जीवन में उतारा। इसी ने उन्हें महान बनाया। विद्वानों का मत है कि गाँधी का विशिष्ट योगदान नीति मीमांसा और समाज दर्शन के सिद्धन्तों को व्यावहारिक रूप देना है।

गाँधी दर्शन का केंद्रीय सिद्धांत है - ईश्वर का प्रत्यक्ष। वास्तव में उनकी ईश्वर की अवधारणा सत्य की अवधारणा से अलग़ नहीं की जा सकती।

ऋत् की अवधारणा से साक्षात्कार करते हुए वे, मानो वैदिक ऋषि की ही भाँति, कहते हैं : जगत में व्यवस्था है और प्रत्येक पदार्थ एवं जीवित प्राणी एक अटल नियम द्वारा संचालित है। यह नियम अँधा नहीं है, क्योंकि जीवित प्राणियों के आचरण को किसी अन्य नियम द्वारा संचालित नहीं किया जा सकता....तो फिर समस्त जीवन का संचालक वह नियम ईश्वर ही है। नियम एवं नियामक एक ही हैं। गाँधी जहाँ पहले इस मान्यता के थे कि ' ईश्वर ही सत्य है ', वहाँ बाद में उन्होने इस सूत्र को बदला और कहा कि 'सत्य ही ईश्वर है'। अपनी इस पुनर्व्याख्या के तहत गाँधी सत्य को ईश्वर से पहले ले आते हैं। इस मत परिवर्तन को वे स्पष्ट करते हुए कहते हैं :

यदि मानव जिह्वा के लिये ईश्वर का पूर्णतम वर्णन सम्भव हो, तो हमें कहना होगा कि ईश्वर सत्य है, परन्तु मैंने एक कदम आगे बढ़ा कर कहा कि सत्य ईश्वर है। मुझे सत्य के सम्बन्ध में कोई दोहरा अर्थ (double meaning) नहीं मिला तथा नास्तिक लोग भी सत्य की तालाश में ही ईश्वर के अस्तित्व को नकारने में ज़रा भी नहीं झिझकते हैं। अतः, 'सत्य ईश्वर है', यह परिभाषा मुझे अधिकतम संतोष देती है।

इस तरह गाँधी, एक तरह से, लगभग चार-पांच हज़ार वर्षों के बाद, दार्शनिक ज्ञान के संभवतः प्राचीनतम स्रोत से निकल कर कई घुमावदार रास्तों से बहती आ रही सरिता को आधुनिक ज्ञान के घाट से जोड़ देते हैं। ❑

७/१२०, मालवीय नगर, जयपुर-३०२०१७

'तबादलों की तलवार' से मुक्त हो नयी शिक्षा व्यवस्था





❑
राजेन्द्र भाणावत

लेखक भारतीय प्रशासनिक सेवा से सेवानिवृत्त अधिकारी हैं। आप समिति के अध्यक्ष भी रहे हैं। ❑ सं.

शिक्षा विभाग में शिक्षकों का स्थानांतरण सदैव से सर्वाधिक विवाद एवं चर्चा का विषय रहा है। इस समस्या का हल संभव है, यदि सरकार में इच्छा शक्ति हो तो। शिक्षक, शिक्षा की धुरी है एवं जब उसे ही मंत्रियों, विधायकों और अधिकारियों के समक्ष अपने तबादलों के लिए गिड़गिड़ाते हुए देखते हैं तो सिर शर्म से झुक जाता है। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या शिक्षकों के तबादले अनिवार्य हैं ? तबादलों के मूल में क्या है, इस पर चर्चा करना उपयुक्त होगा। तबादलों के कारण ही बिचौलियों की संस्कृति पनपी है जो कर्मचारियों के लिए कई बार अत्यंत ही पीड़ा दायक बन जाती है। उनकी ऊर्जा और क्षमता अधिकांशत: अपना तबादला कराने में या उसे रूकवाने में ही व्यर्थ हो जाती है।

हमें इस पर विचार करना चाहिए कि शिक्षकों, विशेषकर प्रारंभिक शिक्षा के शिक्षकों के तबादले की आवश्यकता ही क्या है ? क्या तबादले किए बिना शिक्षा विभाग में अच्छी तरह काम नहीं हो सकता है ?

शिक्षाकर्मी परियोजना के प्रभारी निदेशक के पद पर लगभग चार वर्ष का मेरा अनुभव बताता है कि जब शिक्षकों को स्थानीय स्तर पर चयनित कर उन्हें एक ही विद्यालय में बिना तबादले के डर के रखा जाता है, तो ये औपचारिक रूप से कम योग्य होते हुए भी, शिक्षार्थियों को बहुत उपयुक्त प्रकार की अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान कर पाते हैं। इसी के आधार पर शिक्षा विभाग को कुछ सुझाव हैं, जिन्हें यदि लागू करें तो तबादलों की बीमारी ही जड़ मूल से समाप्त की जा सकती है।

सर्वप्रथम तो यह समझना होगा कि तबादले से कुछ लाभ नहीं होता है। यह बात विशेष रूप से प्रारंभिक शिक्षा के शिक्षकों पर निश्चित रूप से लागू होती है। जब तक राजकीय सेवा में चयन, पूरे राजस्थान राज्य के लिए किया जायेगा, तब तक मंत्रियों, अधिकारियों एवं जन प्रतिनिधियों को, शिक्षकों के तबादले को एक हथियार के रूप में काम लिया जाने से रोकना मुश्किल होगा। संबंधित सेवा नियमों में संशोधन करके, सरकार यह प्रावधान कर सकती है कि शिक्षकों का चयन न तो राज्य के लिए होगा, ना जिले के लिए, ना तहसील के लिए, अपितु उसका चयन ही विद्यालय विशेष के लिए होगा। जब तक संबंधित शिक्षक आवंटित विद्यालय में काम करोग, तब तक ही वह राजकीय सेवा में रहेगा। यदि कोई शिक्षक अन्य किसी विद्यालय में पदस्थापन चाहता है, तो उसे अपने पद

से इस्तीफा देकर दोबारा चयन प्रक्रिया से गुजरना होगा। यदि वह योग्यता सूची में उच्च स्थान प्राप्त करके वांछित स्थान प्राप्त सके, तो किसी को आपत्ति नहीं होगी।

आदर्श स्थिति तो यह होगी कि विद्यालय के संबंधित गांव से ही शिक्षक का चयन किया जाए, जैसा कि शिक्षाकर्मी परियोजना के अंतर्गत किया जाता था। ऐसा करने से दूर दराज के क्षेत्र में भी शिक्षकों की उपलब्धि सुनिश्चित की जा सकती थी। शायद ऐसा करना कानूनन संभव ना हो, तब भी यह तो किया ही जा सकता है कि चयन हेतु प्रक्रिया पूरे राज्य स्तर पर की जाए किन्तु पद स्थापन, योग्यता सूची में स्थान एवं इच्छित स्थान को ध्यान में रखकर किया जाए। जिस व्यक्ति को जिस विद्यालय में नियुक्त कर दिया जाए, पूरे सेवाकाल में वह उसी विद्यालय में रहेगा एवं वहीं से सेवा निवृत्त होगा। ऐसा करने से विद्यालय के शिक्षक एवं विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का भविष्य जुड़ा रहेगा। साथ ही उसे विद्यार्थियों की पारिवारिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए अपनी शिक्षण विधा एवं शिक्षण सामग्री में परिवर्तन और संशोधन करने का अवसर भी प्राप्त होगा। शिक्षक के कामकाज के आकलन में स्थानीय समुदाय का सहयोग भी लिया जाना अपेक्षित होगा।

जिन विद्यालयों में स्थान रिक्त हों, उनकी विद्यालय वार सूची जारी की जा सकती है। आवेदनकर्ताओं से उनके लिए उचित पद स्थापन की वरीयता

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने एक निर्णय दिया भी था कि सरकारी कर्मचारियों को अपने बच्चों को पढ़ने हेतु सरकारी विद्यालयों में ही भेजना चाहिए।

मांगी जा सकती है एवं तत्पश्चात् उनका पद स्थापन उसके द्वारा दी गई वरीयता एवं चयनित सूची में उसके स्थान को ध्यान में रखकर किया जा सकता है। आधुनिक तकनीक की सहायता से ऐसा करना बहुत सरल हो गया है। ऐसा करते ही मंत्री, अधिकारी तथा अन्य जन प्रतिनिधि, किसी भी प्रकार से किसी शिक्षक का तबादला नहीं कर सकेंगे। ये सब अपना पूरा ध्यान शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर बनाने में लगा सकेंगे। शिक्षक भी, जो ऊर्जा अपना तबादला कराने में व्यय करते हैं, उसे संचित करते हुए, उसका पूरा उपयोग अपने ज्ञान एवं प्रशिक्षण के आधार पर बच्चों की शिक्षा की गुणवत्ता को तबादले की तलवार से मुक्त हो जाएगा तो वह अपने स्वयं के बच्चों को भी संभवतया अपने विद्यालय में ही पढ़ाए। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने एक निर्णय दिया भी था कि सरकारी कर्मचारियों को अपने बच्चों को पढ़ने हेतु सरकारी विद्यालयों में ही भेजना चाहिए। इस निर्णय की पालना करने में भी उपरोक्त परिवर्तन से सहायता मिलेगी।

यह पूछा जा सकता है कि शिक्षकों की पदोन्नति पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ? मेरे विचार से एक शिक्षक को पदोन्नति के स्थान पर उसी विद्यालय में रहते हुए, समय-समय पर बढ़ा हुआ वेतन दिया जाना अधिक उपयुक्त होगा। एक शिक्षक, कालांतर में केवल पदोन्नति के आधार पर जिला शिक्षा अधिकारी एवं अन्य पदों पर पदस्थापित किये जायें, यह सोच सही नहीं हैं। एक उत्कृष्ट श्रेणी का प्रारंभिक शिक्षा का शिक्षक, पदोन्नत होकर द्वितीय श्रेणी का शिक्षक भी अच्छा सिद्ध हो, आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार उत्कृष्ट वरिष्ठ अध्यापक, अच्छा प्रधानाचार्य बन पाये यह आवश्यक नहीं है। प्रत्येक पद के लिए अलग-अलग प्रकार की योग्यता, और दक्षता की आवश्यकता होती है। जो व्यक्ति प्रारंभिक कक्षाओं के लिए अच्छा शिक्षक है, उसे वही काम करते रहने दिया जाना चाहिए। हां, यह अवश्य है कि उसे मिलने वाला वेतनमान एवं वेतन, समय-समय पर बढ़ाया जाना चाहिए। संभव है कालांतर में, जिला शिक्षा अधिकारी से अधिक वेतन, प्रारंभिक कक्षाओं में पढ़ाने वाले अनुभवी शिक्षक को मिले।

जिला शिक्षा अधिकारी, प्रधानाचार्य, प्रधानाध्यापक आदि प्रशासनिक पदों के लिए नियुक्तियों की अलग से प्रक्रिया होनी चाहिए ताकि उन पदों के लिए आवश्यक क्षमता एवं योग्यता वाले व्यक्तियों का चयन किया जा सके।

शिक्षकों को प्रतिमाह निश्चित अवधि का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि वे अपने कौशल एवं क्षमता में

निरंतर वृद्धि कर सकें। शिक्षक के, एक ही विद्यालय में निरंतर बने रहने से, एक दूसरे पर दोषारोपण करने की प्रवृत्ति भी समाप्त होगी। सामान्यतया, नया शिक्षक खराब परिणाम के लिए पुराने शिक्षकों को दोषी बताता है। जब एक ही शिक्षक लगातार विद्यार्थियों से जुड़ा रहेगा, तो इस समस्या का भी हल हो जाएगा।

राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश शिक्षक उत्तरी और पूर्वी राजस्थान के कुछ जिलों से आते हैं एवं पश्चिमी तथा दक्षिणी राजस्थान के जिलों से अपेक्षाकृत कम शिक्षक चयनित हो पाते हैं। भर्ती नियमों में उपरोक्त अनुसार संशोधन करने के बाद, सामान्यत: संबंधित क्षेत्र के शिक्षक अपने विद्यालय में शिक्षक बनना पसंद करेंगे। जो व्यक्ति चयनित होंगे, उनको अपना भविष्य आवंटित क्षेत्र में ही तलाशना होगा क्योंकि उसके लिए तबादले की संभावना समाप्त हो जाएगी। संबंधित गांव और विद्यालय के बच्चों तथा शिक्षकों का भविष्य सदैव जुड़ा रहेगा।

यदि हम वास्तव में शिक्षकों को तबादले की तलवार से मुक्त रखना चाहते हें और विद्यार्थियों को शिक्षकों के अभाव से, तो हमें इस दिशा में विचार करना ही होगा। वर्तमान में बड़े शहर के विद्यालयों में आवश्यकता से कहीं अधिक शिक्षक हैं जबकि दूर-दराज के बड़ी संख्या में ऐसे विद्यालय हैं जहां एक या एक भी शिक्षक उपलब्ध नहीं है। उपरोक्त व्यवस्था लागू होने पर ऐसी स्थिति कभी उत्पन्न नहीं होगी एवं तबादलों से संबंधित अनावश्यक प्रशासनिक काम एवं जटिलताओं से बचा जा सकेगा।

वैसे तो तबादला किसी भी विभाग में किसी समस्या का कोई हल नहीं है, किन्तु शिक्षा विभाग में तो इसका कोई उपयोग एवं महत्व कतई नहीं है। वर्तमान में, कई बार, विशेष परिस्थितियों में ऐसा करने का अधिकार सरकार अपने पास सुरक्षित रखती है और सारे तबादले उसी गली के माध्यम से होने प्रारंभ हो जाते हैं। जब नियुक्ति ही एक विशेष विद्यालय के लिए होगी तो तबादलों की व्यवस्था ही स्वत: समाप्त हो जाएगी। राजस्थान इस दिशा में पहल करने वाला देश का पहला राज्य बन सकता है जिससे शिक्षकों को यह अवसर मिलेगा कि पूरे मनोयोग से बच्चों को पढ़ाने के काम में लग सकें। साथ ही ऐसी कोई स्थिति उत्पन्न नहीं होगी जिसमें कोई विद्यालय, शिक्षक विहीन हो।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन पाठ्यपुस्तकों से संबंधित है। **वर्तमान पाठ्य पुस्तकों के स्तर और प्राथमिक कक्षा के छात्रों के स्तर में कोई समानता नहीं है।** राजकीय विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों के माता-पिता भी पढ़ाई में कोई सहायता करने में सक्षम नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि पांचवीं कक्षा उत्तीर्ण करने वाला प्रत्येक बच्चा कम से कम हिन्दी के सरल वाक्य समझ कर पढ़ने लिखने की तथा दो अंकों के जोड़, बाकी, गुणा, भाग करने की योग्यता तो अर्जित कर ही ले। किताबों का स्तर अत्यंत सरल हो। **पाठ्य पुस्तकें स्थानीय संदर्भ से जुड़ी हों। यथा संभव प्राथमिक कक्षाओं की पढ़ाई स्थानीय बोली से हो तो और भी अच्छा होगा।** स्थानीय भाषा, बोली के माध्यम से बच्चा तेजी से सीखता है और इसी कारण उसकी रुचि पढ़ने में बनी रहती है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी स्थानीय बोली में पढ़ाई प्रारंभ करने पर बल दिया गया है। वर्तमान पुस्तकें संदर्भ से कटी हुई हैं।

शिक्षण सामग्री एवं विधाओं में भी स्थानीय संदर्भ को प्रमुख स्थान देना होगा। बच्चो जो प्रतिदिन देखता है उसे आधार बनाकर पढ़ाया, लिखाया, समझाया जाएगा तो वह कहीं अधिक प्रभावी होगा। इसके फलस्वरूप बच्चों में पढ़ने के प्रति उत्साह भी बना रहेगा। लोक जुंबिश और शिक्षाकर्मी जैसी परियोजनाओं ने इस अवधारणा को पुष्ट किया है। **दुर्भाग्य है कि जिन परियोजनाएं के कारण राजस्थान की पहचान बनी, वहीं पर इन्हें बंद कर दिया गया जबकि अन्य कई राज्यों ने इन्हें अलग अलग नाम से अपने राज्य में संचालित किया। समय आ गया है जब राजस्थान में उन्हीं अवधारणाओं के आधार पर पूरी शिक्षा व्यवस्था को बनाया जाए। शिक्षकों का प्रशिक्षण भी तदनुसार बदलना होगा।**

यदि सरकार गंभीरता से विचार करे तो यह निश्चित ही शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा।❑

४११ फाऊनटेन स्क्वायर,
ललित होटल के पीछे, जवाहर सर्किल, जयपुर
डेवलपमेंट रिव्यू से साभार)

जीवन की शोभा है संयम

❑



❑
ओमप्रकाश टाक

लेखक जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर के आजीवन शिक्षा विभाग में निदेशक हैं। ❑सं.

संयम एक छोटा-सा शब्द है लेकिन इसमें एक सम्पूर्ण जीवन-दर्शन समाहित है। संयम जीवन को सुन्दर और सार्थक बनाने का सूत्र है। संयम से आशय एक ऐसी जीवन पद्धति से है जो सहज-स्वाभाविक, प्राकृतिक और अकृत्रिम है। संयमित जीवन सम्यक् आहार-विहार और सम्यक् विचाराचार से निर्मित होता है। इससे मनुष्य के कषाय कटते हैं, इन्द्रियां उन्नत बनती हैं, मन में प्रफुल्लता रहती है और अन्तर्जगत् शक्ति और समृद्धि पाता है। आज देश और विश्व को संयमित जीवन की ही आवश्यकता है। यही मनुष्य-जाति के लिये इक्कीसवीं शताब्दी का आह्वान है।

जब हम संयमित जीवन की बात करते हैं तो इसके अर्थ को प्राय: इन्द्रिय संयम तक सीमित कर देते हैं लेकिन व्यापक संदर्भ में देखें तो इसमें अर्थ संयम, विचार संयम और समय संयम भी शामिल है। यह सही है कि सामान्य व्यक्ति के लिये मन और इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण सर्वाधिक कठिन है लेकिन इनकी भोग चेष्टाओं की गति को विवेकपूर्वक अवरुद्ध करने का प्रयत्न तो होना ही चाहिए। इसी से धीरे-धीरे इन्द्रिय संयम सधने लगता है। इसी तरह किसी को धोखा दिए बिना परिश्रम और ईमानदारीपूर्वक अपनी आजीविका कमाने के संकल्प से अर्थ संयम सधता है। मन में आने वाले विचारों का सतत सूक्ष्म अवलोकन-मूल्यांकन करते रहने से अनर्गल और कुविचारों पर लगाम लगती है। इससे विचार संयम को साधने में सहायता मिलती है। इसी भांति समय को व्यर्थ की बातों और गैर जरुरी कार्यों में खर्च न करने के संकल्प से समय संयम सधता है। वस्तुत: संयमित जीवन जीना कठिन नहीं है। केवल व्रत लेने और अपने संकल्प से स्खलित न होने की दृढ़ प्रतिज्ञा एवं मंगल भावना करने मात्र से संयमित जीवन की राह खुल जाती है।

इस बात को हमेशा स्मरण में रखना चाहिए कि मानव जीवन दुर्लभ और सौभाग्य का अवसर है। इस सौभाग्य को संयम से ही बरकरार रखा जा सकता है। गांधीजी ने कसौटी दी कि अधिक से अधिक कर्मशील मनुष्य ज्यादा से ज्यादा संयमी होगा। वे यहां तक कहते हैं कि संयमहीन स्त्री-पुरुष को तो बेकार ही समझना चाहिए। इन्द्रियों को निरंकुश छोड़ देने वाले का जीवन पतवार हीन नाव के समान बन जाता है, जिसका डूबना तय है। कदाचित् इसीलिए गांधी संयम को जीवन का स्वर्णिम सूत्र मानते हैं और कहते हैं कि संयमशील का जीवन सदा सुखी रहता है। अब प्रश्न उठता है कि जब संयम की इतनी महिमा है तो यह हमारे जीवन में प्रतिष्ठित क्यों नहीं हो पाता है ? इसका उत्तर यह है कि **आत्म**

नियंत्रण और **विवेक के अभाव** में ही मनुष्य कमजोर पड़ता है और संयम से डिगता है। कर्मठ, दृढ़ निश्चयी और विवेकी व्यक्ति कभी असंयमी नहीं बनता। विडंबना है कि हम संयम को केवल संत-महापुरुषों के जीवन की संहिता मानते हैं जबकि सत्य यह है कि देश और विश्व में जहां भी महान् कार्य करने वाले लोग हुए हैं उन्होंने संयम पथ पर चलकर ही अपनी उपलब्धि हासिल की है। आज हम स्पष्टत: देख रहे हैं कि मनुष्य का व्यक्तिगत जीवन पीड़ा और तनाव से भरा है, सामाजिक ताना-बाना छिन्न-भिनन हो गया है और नागरिक जीवन में भी एक संकीर्ण सोच और विध्वंस हावी होता दिख रहा है। इस स्थिति का मूल कारण यही है कि हमारे मध्य विचाराचार की मर्यादाएं टूट गई हैं, व्यक्तिगत स्वार्थ हावी हो गया है और समाज व देश का हित गौण हो गया है। इतिहास साक्षी है कि जब भी मनुष्य ने संयम का त्याग दिया है तब ऐसी ही दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों ने जन्म लिया है।

पिछले दिनों स्वाध्याय के दौरान मैंने एक पंक्ति पढ़ी-वस्तुओं से हीन होते जाने का अर्थ है व्यक्तित्व से संपन्न होना। इस सुभाषित का मर्म यह है कि **वस्तुएं और वस्तुवादी विचार** हमें कभी शुभ मर्म नहीं दिखला सकते। उनसे न व्यक्तित्व समृद्ध होता है और न ह्दय को खुराक मिलती है। अतिशय वस्तुभोग संयम पथ में एक बहुत बड़ी बाधा है। आज घर और बाजार में सर्वत्र शरीर की जरूरतों को पूरा करने के लिए सामान भरा पड़ा है लेकिन आत्मा को उन्नत बनाने वाला ह्दय को भाव पोषण देने वाला सामान कहां है ? तन-मन-धन तीनों को संयमपूर्वक साधने वाला व्यक्ति वस्तु जगत् के साथ कैसा व्यवहार करता है इसका सशक्त उदाहरण मुझे कुंवर नारायण की इस कविता में मिला -

आत्मबोध के लिये जागृत कर सकता है और संयम के लिये मन में आकर्षण उत्पन्न कर सकता है। संत संग ही कलयुग की औषधि है।

कभी-कभी टहलते हुए निकल जाता हूं, बाजारों की तरफ भी।
नहीं कुछ खरीदने के लिए नहीं, सिर्फ देखने के लिए कि इन दिनों क्या बिक रहा है, किस दाम पर और फैशन में क्या है आजकल। वैसे सच तो यह है कि बाजार एक ऐसी जगह है, जहां मैंने हमेशा पाया है एक ऐसा अकेलापन जैसा मुझे बड़े-बड़े जंगलों में भी नहीं मिला और एक खुशी कुछ-कुछ सुकरात की तरह कि दुनिया में इतनी ढेर-सी चीजें हैं, जिनकी मुझे कोई जरूरत नहीं।

सचमुच वस्तु बाजार के प्रति ऐसा ही निमर्म आक्रोश हमारे मन में जगना चाहिए। यह काव्य-भाव संयम पथ पर चलने वाले के लिए प्रेरक है, कल्याणकारी है।

इन दिनों कई बार मन में प्रश्न उठता है कि क्या ऐसी कोई शक्ति है जो हमें वस्तु-जगत् और देह भाव से निरंतर ऊपर उठाए और आत्मिक सागर में गोता लगाने के लिए प्रेरित करे ? मेरी दृष्टि में संत वाणी और संत महापुरुषों की भाव संगति ही यह जादू कर सकती है। संत सानिध्य ही हमें भोग वासना से बचा सकता है, आत्मबोध के लिये जागृत कर सकता है और संयम के लिये मन में आकर्षण उत्पन्न कर सकता है। संत संग ही कलयुग की औषधि है। स्वामी तुरीयानंद कहते हैं कि आहार, निद्रा, भय और मैथुन इन चार बातों में मनुष्य पशु के ही समान है। केवल ज्ञान की दृष्टि से ही मनुष्य विशेष है। ज्ञान के कारण मनुष्य भले और बुरे का विचार कर सकता है। जीवन जितना विनम्र होगा उतना ही इन्द्रियों में आनंद मिलेगा। निम्न स्तर के लोग कभी इस प्रकार के सूक्ष्म आनंद को समझ नहीं पाते हैं और पशुवत जीवन जीते रहते हैं लेकिन जिनका मन उच्च भूमि पर आरूढ़ रहता है उनका मन इन सब भोग्य विषयों में नहीं रमता है। स्वामीजी यहां तक कहते हैं कि कोई चाहे कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, कितना ही बड़ा कार्य क्यों न करे पर किसी न किसी दिन उसे वासना शून्य बनना ही पड़ेगा और संत महापुरुषों की शरण में आना ही पड़ेगा और ईश्वर भक्ति में लीन होकर यह कहना ही पड़ेगा कि प्रभु सब परिस्थितियों में मन तुम्हारी ही ओर रहे। सार यह है कि ज्ञान सत्य है अज्ञान नहीं। संयम सत्य है वासना नहीं और भक्ति सत्य है भोग नहीं। संयम ही जीवन को सुन्दर और सार्थक बनाने का मंत्र है। संयमित जीवन है यही आदर्श है और वही वरेण्य है।❑

रामद्वारा, बागर चौक, जोधपुर (राज.)
मो.नं.-९८२९०२७०१०

तलाश

❑

देह मेरी थी,
लेकिन मैं देह का था ही नहीं
परम आत्मा रही बरसों मेरे साथ
मैंने उसे परखा ही नहीं।

पाकर मिट्टी का तन
रख्खा उसे भुलावे में
कभी सुनी ही नहीं आवाज़
विचरता रहा छलावे में।

जिसके लिए घूम रहा था दर-दर
वो मुझे मिला ही नहीं।
रूह में मेरे बसा था वो
मुझे दिखा ही नहीं।

हजारों मन्दिरों की
घंटियों के दे दे कर टंकारे।
चीखा-चिल्लाया
करके घोष जयकारे

भीड़ के कोलाहल में
बहरे हो गये थे कान मेरे।
प्रभु साथ मेरे
घूमते थे हरदम और मैं
नि:सहाय , अभागा
ढूंढ़ता फिरता था बेदम।❑



❑
ईश्वर दत्त माथुर

कवि सूचना एवं जनसंपर्क निदेशालय में संयुक्त निदेशक पद पर रहे है तथा राज्य के वरिष्ठ रंगकर्मी हैं। ❑ सं.

खुद से मिला ही नहीं



ग़ैरों से मिलता फिरता हूं
गफ़लत में हरदम रहता हूं
करूं क्या ?
मैं खुद से कभी मिला ही नहीं।

कभी फुर्सत से समय निकाल
अपने लिए जिया ही नहीं।
छुटपन में घर से ज्यादा
दोस्तों की रही परवाह।

नादानी में क्या-क्या नहीं कर बैठा
जा-जाकर सबको मिलता था
पर मुझे समझता कौन था ?
मैं कभी खुद से मिला ही नहीं।।

पढ़ लिखकर सयाना हुआ
अपनों से बेगाना हुआ
स्टेटस सिम्बल के भ्रम में
किसी को पहचाना नहीं।
मैं खुद से कभी मिला ही नहीं।।

नींद जब खुली,
दुनिया जहां याद आया
न जाने वज़ह क्या रही
जो ख़ुद से भी भरमाया
अब चलावे का वक्त है
फिर भी हिला ही नहीं
मैं ख़ुद से कभी मिला ही नहीं।।❑



कौन किसका ?



मैं
मेरा
यह-वो
कौन-किसका
इसका-उसका
अरे, कौन-किसका?
हम-तुम हमारे सारे
वहम के मारे
वक्त पर नहीं थे जो
साथ हमारे।
सिर्फ रहा मैं-मेरा
यह, वो-कौन, किसका
जरूरत पड़ने पर
एक-एक क्या
तरकीब से खिसका।।❑

एक 'मुश्किल' बच्चा और शैक्षिक हस्तक्षेप

❑



❑
नचिकेत मोर

लेखक जाने माने अर्थशास्त्री हैं और आईआईटी बैंगलोर में सेंटर फॉर इंफॉर्मेशन टेक्नोलॉजी एंड पब्लिक पॉलिसी में सीनियर रिसर्च फेलो हैं। ❑सं.

भारत में बहुत से बच्चे प्राथमिक स्तर से आगे स्कूल में नहीं रुकते, पढ़ाई छोड़ जाते हैं। जो बच्चे स्कूल बीच में छोड़ देते हैं वे आम तौर पर बेरोजगारी की मुश्किलें झेलते हैं, जबकि जो स्कूल में बने रहते हैं वे सीखने की अपेक्षा खराब नतीजे देते हैं। हालांकि किशोरों को अच्छी शिक्षा प्रदान करना सभी देशों का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होता है, किन्तु भारत के लिए इस लक्ष्य को प्राप्त करना विशेष रूप से कठिन बना हुआ है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में कुछ बाधाएं तो इस तथ्य से उत्पन्न होती हैं कि देश की केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा शैक्षिक व्यवस्था के लिए पर्याप्त संसाधन आवंटित नहीं किए जाते हैं। इसके अलावा, सर्वोत्तम संभव परिणाम पाने के लिए सरकार, माता-पिता और स्वयं छात्र जो संसाधन लगा रहे हैं उनका भी प्रभावी ढंग से उपयोग नहीं हो रहा है।

अच्छे दृष्टिकोण, नैतिकता, न्याय और आशावाद की भावना को प्रोत्साहित करने वाली एक अच्छी शिक्षा प्रणाली विकसित करना जो जीवन के ऊंचे लक्ष्यों को पाने में मदद करे हमारे यहां एक चुनौती बनी हुई है। वास्तव में यह पूरी तरह संभव है कि मौजूदा स्कूली शिक्षा व्यवस्था छात्रों को ऐसे लक्ष्यों से दूर ले जाती है, भले ही वह छात्रों में पढ़ने, लिखने और अंकगणितीय कौशल को विकसित करने में सफल रहे। इसके अतिरिक्त, गैर-संज्ञानात्मक कौशल, जो अधिक पारंपरिक संज्ञानात्मक कौशल के योगदान के महत्वपूर्ण रूप से पूरक होते हैं और उसे बढ़ाते हैं, की अक्सर उपेक्षा कर दी जाती है। गैर-संज्ञानात्मक कौशल अनुभव के लिए प्रमुख रूप से खुलापन, कर्तव्यनिष्ठा, अपव्यय, सहमति आदि आवश्यक हैं। इन कौशलों में जीवन में दीर्घकालिक परिणामों की भविष्यवाणी करने की एक जबरदस्त क्षमता होती है और इन्हें विभिन्न उपकरणों और हस्तक्षेपों से साकार किया जा सकता है।

शैक्षिक हस्तक्षेप मुख्य रूप से स्कूलों के सुधार पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जिनकी सफलता उनके छात्रों द्वारा परीक्षाओं में प्राप्त अंकों से मापी जाती है। यह संकीर्ण दृष्टिकोण मानता है कि उपलब्धि के परीक्षण स्कोर जीवन कौशल को प्रतिबिंबित करते हैं। वे हस्तक्षेप गैर-संज्ञानात्मक कौशल के महत्व और समय के साथ उन्हें कैसे विकसित किया जा जाय इस पर पर्याप्त रूप से विचार करने में विफल रहते हैं।

भारत के समक्ष उपस्थित इस अतिआवश्यक चुनौती, जिसमें ५०० मिलियन से अधिक बच्चे और युवा शामिल हैं, से निपटने के लिए वर्तमान में ढांचागत तथा स्कूल में बच्चों के स्तर पर कई हस्तक्षेपों की आवश्यकता है। छोटे बच्चों में मनोसामाजिक उद्वेलन – शारीरिक, संवेदी, और/या भावनात्मक इनपुट– का प्रावधान उनके बाद के जीवन पर काफी प्रभाव डाल सकता है, खासकर जब उनके माता–पिता को भी उन्हें इस तरह उद्वेलन प्रदान करने के लिए प्रशिक्षित किया गया होता है।

हमारे सामने कटक, उड़ीसा में किए गए एक अध्ययन का उदाहरण है। इस अध्ययन में झुग्गी–झोपड़ी में रहने वाले बच्चों और उनकी प्राथमिक देखभाल करने वालों (आमतौर पर मां) के साथ प्रत्येक हफ्ते एक घंटा बिताने कार्यकर्ता उनके घरों पर गये।

उनके घरों पर जाकर बच्चों और उनकी माताओं के बीच संपर्क को बढ़ाने तथा खेलों के माध्यम से अपने बच्चों के विकास को बढ़ावा देने की मां की क्षमता उन्नत करने का प्रयास किया गया। इन घरेलू यात्राओं के १८ महीने के प्रभाव का विश्लेषण किया गया। शहरी कच्ची बस्तियों में इन छोटे बच्चों के विकास में सुधार के लिए यह हस्तक्षेप कारगर पाया गया।

हालांकि, इस तरह के कार्यक्रमों के प्रभाव को मापने पर और विचार करने की आवश्यकता है, क्योंकि इसे मापने के लिए हस्तक्षेप मॉडल में किए गए परिवर्तन इसकी प्रभावशीलता को प्रभावित कर सकते हैं। छोटे बच्चों को, आदर्श रूप से पहली कक्षा के स्तर पर स्कूल की सेटिंग में, संघटित टीम वाले सरल खेलों के माध्यम से यदि स्पष्ट रूप से सिखाया जाता है कि अपने स्वयं के और अपने सहपाठियों के व्यवहार को कैसे विनियमित किया जाए, तो उसका असर उनके वयस्क होने पड़ सकता है।

शिक्षकों को इस बात से अवगत होने के लिए प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है कि एक 'मुश्किल' बच्चा वास्तव में एक या अधिक प्रतिकूल बचपन के अनुभवों का शिकार हो सकता है। उन्हें बालकों के ऐसे व्यवहारों से निबटने के लिए भी प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

शिक्षकों को इस बात से अवगत होने के लिए प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है कि एक 'मुश्किल' बच्चा वास्तव में एक या अधिक प्रतिकूल बचपन के अनुभवों का शिकार हो सकता है। उन्हें बालकों के ऐसे व्यवहारों से निबटने के लिए भी प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

सबसे पहले, शिक्षक को यह पहचानना होगा कि कोई बच्चा किस तरह अपने को संभाल पा रहा है। उसके प्रति करुणा का भाव रखे। 'इस बच्चे के साथ क्या गलत है?' सोचने के बजाय 'इसे क्या हो रहा है?' जानना चाहिए।

स्कूली उम्र के बच्चों को, छोटी अवधि के लिए ही सही, उम्र या स्कूल ग्रेड के बजाय सीखने के स्तर के आधार पर इकट्ठा करना और उन्हें उन क्षेत्रों में केंद्रित एक्सपोजर प्रदान करना जहां उन्हें उपचार की आवश्यकता होती है, उनके सीखने के स्तर पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है। इस दृष्टिकोण के लिए पर्याप्त औपचारिक सबूत 'प्रथम' और 'एमआईटी' में 'पावर्टी एक्शन लैब' द्वारा किए गए संयुक्त अध्ययन में पाए जा सकते हैं।

एक अनुकूली प्रश्न–उत्तर–आधारित पद्धति को आमतौर पर छात्रों के लिए सीखने का एक प्रभावी तरीका समझा जाता है। यह विशेष रूप से अच्छे शिक्षकों और छोटे आकार की कक्षाओं में काम करता है, जहां शिक्षक प्रत्येक छात्र के साथ हरेक विषय में उनके सीखने के स्तर पर काम करने में सक्षम होता है। लेकिन भारत में पारंपरिक कक्षा में प्रत्येक छात्र पर समान रूप से व्यक्तिगत ध्यान देना संभव नहीं है। इसलिए, एक कंप्यूटर आधारित व्यवस्था, जिसमें आर्टिफीशियल इंटेलीजेन्स की मदद से बच्चों को स्कूल के बाद व्यक्तिगत तौर पर सीखाया जा सके एक विकल्प हो सकता है।

यह तरीका माध्यमिक स्कूलों के छात्रों के हिंदी और गणित परीक्षण स्कोर में सुधार करने के लिए माकूल

पाया गया। जिन्हें इसकी पहुंच प्रदान की गई तो उसका प्रभाव लिंग, या भिन्न घरेलू सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में भी छात्रों के आधारभूत परीक्षण स्कोर में समान था।

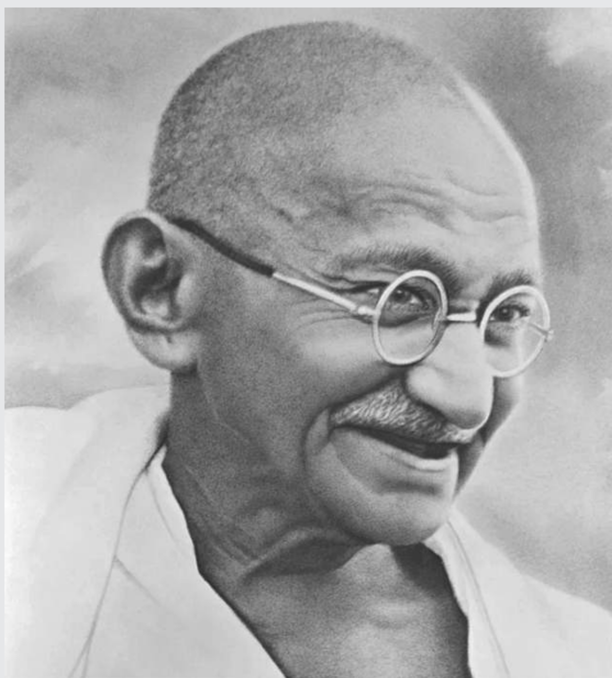
भारत में १६ से २४ वर्ष की आयु के लगभग २२५ मिलियन व्यक्ति हैं, जिनमें से लगभग १८७.५ मिलियन किसी भी शैक्षणिक संस्थान में नहीं हैं।

ऐसे लगभग ४२ मिलियन युवा नियोजित नहीं हैं और उन्हें 'अवसर युवा' के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। मौजूदा सबूत बताते हैं कि इनके लिए सबसे आशाजनक मार्ग है ऐसे समूहों के लिए वे कार्यक्रम चलाना जो सलाह, मार्गदर्शन और जानकारी प्रदान करते हैं।

ये कार्यक्रम कार्यस्थल आधारित होने चाहिए, जो कार्य-प्रासंगिक कौशल पाने को सक्षम करते हैं और वंचित युवाओं को मार्गदर्शन और अनुशासन प्रदान करते हैं जो अक्सर उनके घरों या स्कूलों में नहीं मिलता।

उपरोक्त प्रत्येक हस्तक्षेप में मॉडल के विभिन्न स्थानीय उदाहरण उपलब्ध हैं जिन्हें बड़े पैमाने पर लागू किया गया है और कठोरता से उनका मूल्यांकन किया गया है। देश के युवाओं को समग्र शिक्षा प्रदान करने की चुनौती से निपटने के लिए भारतीय नीति निर्माता और नीति उद्यमी इनसे सीख सकते हैं।❑

(लेख का संपादित अंश, इंडिया डेवलपमेंट रिव्यू से साभार)



सत्य की यह विशेषता है कि वह प्रवृत्तियों पर नियंत्रण या काबू रखता है। यह मन, वचन और कर्मों पर नियंत्रण रखने का साधन है। जो व्यक्ति सत्य का अनुगामी है, वह अपनी प्रवृत्तियों पर आसानी से नियंत्रण रखने में सफल होता है। उसके लिए यह सहज बात होती है, क्योंकि सत्य आचरण में मनोवृत्ति पर काबू रखना अनिवार्य हो जाता है। सत्य को जो पूरी तरह प्राप्त कर लेता है, वह पूर्ण हो जाता है, सम्पूर्ण हो जाता है। सत्य बोलना और सत्य के अनुसार आचरण करना स्वभाव होना चाहिए। सत्य का आचरण करने वाले व्यक्ति को कोई धोखा देने का साहस नहीं कर सकता, क्योंकि जिसका जीवन सत्यमय है, वह तो शुद्ध स्फटिक मणि की तरह हो जाता है, उसके पास असत्य जरा देर के लिए भी नहीं ठहर सकता। ❑

महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन/ २७ नवंबर, १९२१)

मित्र–दृष्टि : पर्यावरण संरक्षण का मंत्र



❑
डॉ. लता व्यास

शिक्षाविद् डॉ. लता व्यास इतिहास की प्राध्यापिका हैं। अपनी पीएचडी की उपाधि के लिए उन्होंने 'प्राचीन भारत में शिक्षा' पर शोध प्रबंध लिखा था। वे अपने विद्यार्थियों को अपने विषय में ही नहीं पर्यावरण के सरोकारों में भी पारंगत करती रहती हैं।❑सं.

प्रकृति के साथ सहकार बनाए रखना भारतीय मानस की विशिष्टता रही है। इस भूभाग के धर्मशास्त्रों, पुराणों व उपनिषदों में मानव के प्रकृति के इस सहकार को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि वन व प्राकृतिक वस्तुएं मानव–जीवन को हमेशा ही एक निश्चित दिशा देती रहीं हैं। यहां के मानव ने विश्व व मानव की आत्मा के बीच के संबंध को महसूस किया है। मानव और प्रकृति के बीच यह सहकार भारतीय संस्कृति में रचा बसा है।

पर्यावरण एक व्यापक शब्द है जो उन संपूर्ण शक्तियों, परिस्थितियों एवं वस्तुओं का योग माना जा सकता है, जो मानव के व्यवहारों तथा क्रियाकलापों को अनुशासित करता है। भारतीय मनीषियों ने मनुष्य को संपूर्ण जीव–जगत का केंद्र–बिंदु मानते हुए मानव के प्रकृति के सहकार को सबसे अधिक महत्व दिया और माना कि सम्पूर्ण विश्व एक अविभाज्य इकाई है। इसलिए कह सकते हैं कि पर्यावरण के सरोकार भारतीय मेधा में प्राचीन काल से रहे हैं।

पर्यावरण का अर्थ है चारों ओर का घेरा। सच में तो पर्यावरण अनेक छोटे–छोटे तंत्रों से लेकर विशालतम तंत्रों का जटिल समन्वय होता है, इसीलिए वेदकालीन मनीषियों ने सबके लिए शांति की प्रार्थना की है। पर्यावरण एवं पर्यावरण संतुलन की ऐसी वैज्ञानिक परिभाषा विश्व के अन्य किसी भू–भाग या संस्कृति में नहीं मिलती।

ओम द्यो: शांतिरंतरिक्षम् शांति:
पृथिवी शांतिराप: शांतिरोषधय:
शांतिर्वनस्पतय: शांति विश्वे देवा:
शांतिरेधि। –शुक्ल, यजुर्वेद, ३६/१७११

(द्युलोक से लेकर पृथ्वी के सभी जैविक और अजैविक घटक संतुलन की अवस्था में रहे। अदृश्य आकाश (द्युलोक) नक्षत्र युक्त दृश्य आकाश (अंतरिक्ष), पृथ्वी एवं उसके सभी घटक जल, औषधियां, वनस्पतियां, संपूर्ण संसाधन (देव) एवं ज्ञान संतुलन की अवस्था में रहे)

हमारे ऋषियों और मनीषियों ने 'सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्' का मंत्र रचते हुए 'सर्वेभवंतु सुखिन: सर्वेसंतु निरामया' वाली जीवन शैली दी थी जिसे अपनाते हुए संपूर्ण जीवन जीने के भौतिक संसाधनों तथा शारीरिक, मानसिक विकास के आवश्यक आंतरिक संसाधनों के बीच समन्वय के जरिये पर्यावरण की सुरक्षा का आह्वान किया गया था।

पुराने समय में पर्यावरण का अर्थ वातावरण माना जाता था। किन्तु आज पर्यावरण का अर्थ इतना व्यापक हो चुका है कि इसमें संपूर्ण पृथ्वी,

उसका वातावरण और इस धरती पर विद्यमान हर वस्तु को पर्यावरण का हिस्सा मान लिया गया है। 'पर्यावरण' के अंतर्गत प्राणी-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, रसायन-विज्ञान तथा खगोल विज्ञान जैसे अनेक विज्ञान शामिल हो जाते हैं। अब तो 'पर्यावरण' शब्द आम बोलचाल में भी आ गया है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने पृथ्वी को तीन जैव मंडलों में विभक्त किया है। इन जैव मण्डलों में से एक 'जलमंडल' कहलाता है जिसमें नदियां, समुद्र, तथा अन्य जल स्रोत आते हैं। जैवमण्डल का दूसरा भाग 'वायुमंडल' है। इसमें हमारी प्राण वायु ऑक्सीजन के अलावा अन्य सभी प्रकार की गैसें शामिल हैं। जैवमण्डल का तीसरा भाग 'स्थल मंडल' कहलाता है जिसमें हमारी धरती, वनस्पति और जीव जन्तु शामिल हैं। यह सभी मण्डल मिल कर पर्यावरण बनाते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि के स्वास्थ्य के लिए पर्यावरण का संतुलित रहना जरूरी होता है। लेकिन मानव ने अपनी सुख सुविधाओं का विस्तार इतना कर लिया है और ऐसी जीवन शैली अपना ली है जो पर्यावरण को नुकसान पहुंचाती है। अब तो इन तथ्यों से सभी वाक़िफ़ भी हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेकों शोध भी इनकी पुष्टि करते हैं। यह भी सच है कि पर्यावरण को हो रहे नुकसान को रोकने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अभियान चलाए जा रहे हैं और सभी देश अपने-अपने स्तर पर कदम उठाने लगे हैं। लेकिन यह काम ऐसा नहीं है जो रातों रात पूरा हो जाए। लंबे समय तक सबको प्रयास करने होंगे जिसमें सबसे महत्वपूर्ण है पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाले कारकों को दूर किया जाए। यह तभी हो सकता है जब वैकल्पिक उपाय किए जाए। इसके लिए नये शोध करने होंगे, नये उत्पाद बनाने होंगे और ऊर्जा के ऐसे नये स्रोत खोजने होंगे जो पर्यावरण से सहकार रखते हों।

यदि आमजन के दैनिक जीवन को देखें तो हम पाएंगे कि लोग व्यक्तिगत स्तर पर ऐसे काम करते हैं जिनसे पर्यावरण का बिगाड़ होता है जिसे वे स्वयं भी भोगते हैं। इसमें सबसे ऊपर है जल और वायु प्रदूषण। जलस्रोतों का प्रदूषण रासायनिक पदार्थ तथा मल-मूत्र का उनमें विसर्जन यदि के कारण होता है। ईंधन, कागज, प्लास्टिक आदि को जलाने तथा पेट्रोल व डीजल से चलने वाले वाहनों से वायु प्रदूषण होता है।

हमें यह स्वीकार करना होगा कि पर्यावरण के प्रदूषण के लिए हम सभी जिम्मेवार हैं इसलिए इसे बचाने के लिए भी हम सभी को सामूहिक और एकल प्रयास करने होंगे। जल का उपयोग किफायत से करके तथा जल संरक्षण के उपाय करके भी हम इस अभियान में अपना योगदान कर सकते हैं। एकल वाहनों की बजाय सार्वजनिक वाहनों का प्रयोग करके तथा एयर कंडीशन तथा वैभव के उन सामानों व सामग्रियों का उपयोग कम करके भी हम वायु प्रदूषण को रोकने में अपना योगदान कर सकते हैं।

धरती पर मानव-जाति को मिले सभी प्राकृतिक संसाधनों की समग्रता का नाम है पर्यावरण। ये संसाधन हैं- भूमि, जल, वायु, वनस्पति, वन और वन्यजीव हमारे जीवन को हमेशा प्रभावित करते हैं। जैसा कि किसी कवि ने कहा है क्षिति, जल, पावक, गगन, पवन मिल पर्यावरण सजाते/ सफल सृष्टि के संचालन को, ये संतुलित बनाते।

मनुष्य ने अपने बुद्धि कौशल और क्षमता से प्रकृति पर विजय पा ली। इसी विजय के अहंकार से वह प्रकृति का नाश करते हुए अपना ऐश्वर्य बनाता रहा और आज इस हाल में पहुंच गया जब पर्यावरण का बिगाड उसके ही जीवन को प्रभावित करने लगा है। औद्योगीकरण से मिली भौतिक समृद्धि से मानव स्वार्थी बनता चला गया है।

लेकिन वह अब यह पहचानने भी लगा है कि पर्यावरण उन जैविक तथा अजैविक घटकों का समूह है, जो परस्पर प्रक्रिया द्वारा मानव तथा जीव-जंतुओं के जीवन को प्रभावित करते हैं। विभिन्न प्राकृतिक घटकों का संतुलन बिगड़ जाने से संपूर्ण पर्यावरण-तंत्र अस्थिर हो जाता है। इस अस्थिरता को पर्यावरण का प्रदूषण कहते हैं। इसलिए कह सकते हैं कि प्रकृति के सभी घटकों में संतुलन बनाये रखने से ही पर्यावरण संरक्षण हो सकता है।

यहां के लोगों ने वृक्षों को देवता मान कर कृतज्ञ भावना से उनका नमन किया है। सभी संस्कारों एवं त्यौहारों में कभी शमी के रूप में तो कभी पीपल, बड़, तुलसी के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित किया जाता है। आम, पल्लव, कुंद, पाटल, अशोक, तुलसी

दल, आदि भी हमारी जीवन-प्रक्रिया के अभिन्न अंग बने। गीता के विभूतियोग में भी भगवान कृष्ण ने वृक्षों की महिमा कही। लोक भाषा में रच कर रामायण को जन जन तक पहुंचाने वाले तुलसीदासजी के काव्य में भी वनस्पति का वर्णन मिलता है।

हमारे देश में नदियों को पवित्र मान कर पूजा गया। उनके किनारों पर ही देश की संस्कृतियां पनपी। वन्य जीवों का संरक्षण सनातन संस्कृति का विशिष्ट और अभिन्न अंग रहा है। मोर को देवी सरस्वति का वाहन, सिंह को महाकाली का, हाथी को इन्द्र का और मूषक को गणेश का वाहन मान कर इन देवी देवताओं के साथ पूजा गया। ज्योतिष में भी राशियों के नाम पशुओं के नाम पर हैं। अशोक स्तंभ पर वन्य-जीवों की सुरक्षा का निर्देश अंकित है।

वास्तव में ऋषियों ने तो प्रकृति के सभी उत्पादनों को देवस्वरूप माना है। वेदों में जल को 'आपो देवता' नाम से संबोधित किया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् कहता है कि सभी प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न से ही जीवित रहते हैं, अन्न से ही बल और तेज दोनों हैं, अन्न के बिना जीवन दुर्लभ है। ऊर्जा के अक्षय स्रोत सूर्य को स्थावर जंगम की आत्मा कहा गया है-सूर्य आतना जगत स्तस्तुषश्च।

यजुर्वेद चर-अचर सभी को मित्र दृष्टि से देखने का संदेश देता है: मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुष समीक्षा महे।

अतः कहा जा सकता है कि जब पर्यावरण के प्रति मानव में मित्रता का भाव बनेगा, तभी इस धरती का पर्यावरण सुरक्षित रह पाएगा। हमें चाहिए कि हम अपने आस-पास की प्राकृतिक संपदाओं को मित्र समझकर उनका उपयोग करें।❑

मकान नं. ५८, गुप्ता बालभारती स्कूल के पास, रोड़ नं.-१, श्री गंगानगर

खास-खबर

स्कूली शिक्षा: झुंझुनू जिले के 'उत्कर्ष' पर हमें गर्व है

केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय ने २०१८-१९ और २०१९-२० के लिए जिला स्तर पर स्कूल शिक्षा का आकलन करने वाली जिला निष्पादन ग्रेडिंग सूचकांक (पीजीआई-डी) रिपोर्ट जारी की है। जिला आधारित स्कूल परफॉर्मेंस ग्रेडिंग इंडेक्स के तहत एक इंडेक्स बनाकर स्कूली शिक्षा प्रणाली के प्रदर्शन का व्यापक विश्लेषण के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है।

जिला निष्पादन ग्रेडिंग सूचकांक (पीजीआई-डी) में राजस्थान के सीकर जिले ने सबसे अच्छा प्रदर्शन किया है, जिसके बाद झुंझुनू और जयपुर जिले का नंबर है। रिपोर्ट में इन तीन जिलों ने १०० के स्केल पर ८१-९० अंक हासिल करके 'उत्कर्ष' ग्रेड हासिल किया। इस रिपोर्ट के मुताबिक विभिन्न श्रेणियों में राजस्थान के तीन जिले स्कूली शिक्षा में प्रदर्शन में अग्रणी हैं।

जहां राजस्थान के तीन जिलों ने 'उत्कर्ष' श्रेणी में जगह हासिल की है वहीं उच्चतम श्रेणी में देश के किसी भी जिले ने जगह नहीं बनाई है। ९० प्रतिशत से अधिक अंक हासिल करने वाले जिलों के लिए उच्चतम ग्रेड 'दक्ष' दिया जाता है।

२०१९-२० के लिए जिलों के पीजीआई-डी से पता चलता है कि देश भर के स्कूलों ने डिजिटल लर्निंग की श्रेणी के तहत खराब प्रदर्शन किया जिसने इंडेक्स बनाते समय विचार किए गए अन्य मापदंडों की तुलना में सबसे कम स्कोर किया। इंडेक्स में १८० जिलों ने डिजिटल लर्निंग पर १० प्रतिशत से कम स्कोर किया है। १४६ जिलों ने ११ से २० प्रतिशत, जबकि १२५ जिलों ने २१ से ३० प्रतिशत के बीच अंक हासिल किये।

शिक्षा मंत्रालय की यह रिपोर्ट डिजिटल लर्निंग के क्षेत्र में साफ तौर पर ग्रामीण-शहरी विभाजन को भी रेखांकित करती है। उदाहरण के लिए चंडीगढ़ और दिल्ली जैसे शहरों के जिलों ने ५० में से २५ से ३५ के बीच अंक हासिल किए, जबकि बिहार के अररिया और किशनगंज शहरों ने २ से कम स्कोर हासिल किया।❑

ऐसा कहां से लाएं कि तुझसा कहें जिसे

❑

शीन काफ़ निज़ाम

उर्दू के जानेमाने साहित्यकार और आलोचक प्रोफ़ेसर गोपी चंद नारंग का १५ जून की रात अमेरिकी प्रांत नॉर्थ कैरोलाइना के एक शहर में निधन हो गया। नारंग का जन्म ११ फ़रवरी, १९३१ को दुक्की में हुआ था जो कि अब पाकिस्तान के बलूचिस्तान में है।

अपनी ९१ साल की ज़िंदगी में गोपी चंद नारंग को कम से कम १० बड़े सम्मान मिले और दुनिया की छह बड़ी फ़ेलोशिप मिली। उन्होंने सात जगहों पर पढ़ाने का काम किया और ७० से अधिक किताबें लिखीं जिनमें से आठ अंग्रेज़ी ज़ुबान में, सात हिंदी में और ५० से अधिक उर्दू भाषा में थीं। उनके बारे में कहा जाता है कि उन्हें केवल वही सम्मान नहीं मिलें जिसकी ज्यूरी में वो खुद थे।❑ सं.



गोपी चंद नारंग
११ फरवरी १९३१ –१५ जून २०२२

नारंग के साहित्यिक जीवन की शुरुआत शायरी से हुई। बाद में कहानी-लेखन हुआ। पहली कहानी पंद्रह साल की उम्र में, जब हाई स्कूल में थे, लिखी जो १९४६ में क्वेटा (अब पाकिस्तान में) से निकालने वाले 'बलूचिस्तान समाचार' में प्रकाशित हुई। बलूचिस्तान के ज़माने में जो कुछ ग़ज़लें, नज़्में लिखीं वे सभी एक रजिस्टर में थीं जो परिवार के विभाजन में दिल्ली आते समय कहीं फ़साद में खो गईं। इस नुकसान के बाद उनका सृजन से संबंध समाप्त हो गया और वे जीवन पर्यंत शोध एवं आलोचना के हो रहे। उनके शोध का विषय भी बहुत दिलचस्प था। विशेष रूप से तब जब मौलवी अब्दुल हक़ ने यह कह दिया था कि पाकिस्तान तो उर्दू ने बनाया है। और यह माना जाने लगा कि उर्दू मुसलमानों की भाषा है। ऐसे नफ़रत भरे माहौल और उर्दू दुश्मनी के ज़माने में उर्दू शाइरी का

अन्य उर्दू प्रेमियों और नारंग के उर्दू-प्रेम में यह अंतर था कि नारंग की उर्दू के भविष्य को लेकर घड़ियाली आंसू बहाने वालों में गिनती नहीं की जा सकती। उनका रवैया आशावादी था। वे उच्च सांस्कृतिक मूल्यों के पक्षधर थे जो हिन्दू और मुसलमानों के संपर्क या संबंध से अस्तित्व में आए।

तहज़ीबी अध्ययन कैसा रहा होगा इसका अंदाज़ा ही किया जा सकता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि उनका तमाम लेखन उर्दू की तहज़ीबी जड़ें तलाश करने और बताने ही का आला नमूना है। उर्दू के तहज़ीबी अध्ययन की यह तान अंततः उनकी पुस्तक 'ग़ालिब' पर टूटती है।

नारंग उर्दू भाषा और साहित्य में भारतीय परंपरा के दर्शन करते कराते हुए भी समय के साथ साहित्य में आने वाले परिवर्तनों को भी समझते रहे। उनके कामों से यह प्रमाणित होता है कि उनके निकट अतीत के बिना वर्त्तमान को नहीं समझा जा सकता और वर्त्तमान भविष्य का अतीत है। शम्स उर रहमान फ़ारुकी जब जदीदीयत की तरफ आकर्षित हुए तो नारंग ने बढ़-चढ़ कर उनका साथ दिया। दोनों ने मिल कर प्रगतिशील आंदोलन के अतिवाद का विरोध किया और उर्दू में आधुनिकता को स्थापित करने में सफलता पाई। उनकी उस कारकर्दगी पर टिप्पणी करते हुए पाकिस्तान के सुप्रसिद्ध आलोचक शाइर सलीम अहमद लिखते हैं :

''डॉ. गोपीचन्द नारंग में एक बड़ी खूबी यह है कि एक तरफ़ तो रिवायत (परंपरा) के आदमी हैं। दूसरी तरफ जदीदीयत (आधुनिकता) से भी उनका कांटा भिड़ा हुआ है। वो तो जदीदियों (आधुनिकतावादियों) के ऐसे सरपरस्त हैं कि अगर हिंदुस्तान में वो और शम्स उर रहमान फ़ारुकी न हों तो जदीदीयत का कारोबार ही ठप्प हो जाये। और मेरा तो खयाल है कि रिवायत और जदीदीयत का जैसा खूबसूरत संगम डॉ. नारंग की शख़्सियत में हुआ है, उतना तो शम्स उर रहमान फ़ारुकी में भी नहीं मिलता।''

उर्दू में प्राच्य काव्य-शास्त्र अरबी एवं फारसी काव्य-शास्त्र रहा है। नारंग ने लगभग पहली बार इतने विस्तार से संस्कृत भाषा दर्शन की दृष्टि से उर्दू एवं उत्तर आधुनिक दार्शनिकों और विचारकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है।

दो समान रूप से श्रेष्ठ बुद्धिजीवियों का साथ बहुत देर-दूर तक नहीं रह पाता। जब आधुनिकता में अतिवाद बढ़ने लगा तो नारंग ने थ्योरी की तरफ़ रुख कर लिया। फ़ारूकी ने जब आधुनिकता को प्रगतिशीलता के विरोध में स्थापित करना चाहा और वे सफल होने लगे तो प्रगतिशीलों ने कहा यह हमारा एक्सटेंशन है। फ़ारूकी यही तर्क उत्तर आधुनिकता के विरोध में देते हुए उर्दू के क्लासिक काव्य-शास्त्र, क्लासिक शाइरों (मीर, ग़ालिब) और अतीत की पृष्ठभूमि पर गल्प साहित्य लिखने लगे, और नारंग उत्तर आधुनिकता और थ्योरी में डूब कर उसकी जड़ें प्राच्य प्रज्ञा में तलाश करने लगे। फ़ारूकी के उपन्यास कईं चांद थे सरे आसमां की मिसाल उर्दू गल्प साहित्य में नहीं मिलती। वह अपनी तरह का बेमिसाल उपन्यास है। मीर और ग़ालिब पर उनकी व्याख्याएं भी उम्दा हैं तो नारंग की पुस्तक 'ग़ालिब' का जवाब उर्दू-आलोचना में नहीं मिलता। उन्होंने ग़ालिब की जो व्याख्या की है वह उत्तर आधुनिक पैमानों के सहारे की है। थ्योरी और उत्तर आधुनिकता पर उनके काम की मिसाल उर्दू में तो क्या अन्य भारतीय भाषाओं में भी मुश्किल से मिलेगी।

वैचारिक मतभेद मालूम नहीं कब और कैसे व्यक्तिगत मतभेद में बदल गये। बीच के लोगों ने भी अपने मफ़ाद के लिए इन दो समकालीन विद्वानों के बीच ऐसी खाई पैदा की जिसे अंत तक नहीं पाटा जा सका। मुझे वह ज़माना याद है जब नारंग साहिब शम्स उर रहमान फ़ारुकी को शम्स उल उलमा (विद्वानों में सूर्य के समान -एक उपाधि जो अंग्रेजी शासन काल में मुस्लिम आलिमों को सम्मानार्थ दी जाती थी) कहते नहीं थकते थे, और फ़ारुकी साहब नारंग साहिब का कितना सम्मान करते थे इसका प्रमाण उनका वह लेख है जिसका शीर्षक है गोपीचन्द नारंग: मेरा रक़ीब मेरा दोस्त।

दोनों ही को इस रंजिश पर अफ़सोस था। शहरयार, बलराज कोमल आदि ने गले मिलवाया भी लेकिन ... टूटे से फिर ना मिले...। साहित्य अकादमी के सभागार में फ़ारूकी साहिब की शोक-सभा थी। नारंग साहिब अस्वस्थ थे। इसलिए वर्चुअली शामिल हुए। अपनी श्रद्धांजलि उन्होंने इस पंक्ति पर समाप्त की लज्जते इश्क गई ग़ैर के मर जाने से। स्वर्गीय जिगर मुरादाबादी कहते थे कि

रक़ीब (प्रतिद्वद्वी) पर इससे बेहतर शेर नहीं है। शाम को उनका फोन आया, बहुत उदास थे। फिर इस पंक्ति के बारे में बात करते हुए पहली पंक्ति की बाबत पूछा। मैंने कहा सामने उनके न कहते, मगर अब कहते हैं। लज्जते इश्क गई ग़ैर के मर जाने से।

'लज्जते इश्क की स्मृति और पुराने दोस्त की नई दुश्मनी की याद करते हुए (जिसे लोगों ने सांप्रदायिकता का रंग तक देने से गुरेज़ नहीं किया था) में उर्दू-इश्क का यह फ़रीक़ भी १५.०६.२०२२ को विदा हो गया। फ़ारुकी २५.१२.२०२० को कोविड का सहारा लेकर रुखसत हुए थे और नारंग दिल का। दोनों उर्दू के ऐसे सच्चे आशिक कि आप अपनी मिसाल थे।

अन्य उर्दू प्रेमियों और नारंग के उर्दू-प्रेम में यह अंतर था कि नारंग की उर्दू के भविष्य को लेकर घड़ियाली आंसू बहाने वालों में गिनती नहीं की जा सकती। उनका रवैया आशावादी था। वे उच्च सांस्कृतिक मूल्यों के पक्षधर थे जो हिन्दू और मुसलमानों के संपर्क या संबंध से अस्तित्व में आए। उनके विचार में अब हिंदुस्तान का समाजी और सांस्कृतिक जीवन एक रंग नहीं हो सकता। उसकी बुनियाद में तो एकता है परंतु उसके बाह्य को जितना एक रंग करने का प्रयास किया गया है उतनी ही असफलता हाथ आई है। उनका मानना था कि तेरहवीं और चौदहवीं सदी से विभिन्न तत्वों को एकता के सूत्र में बांधने का काम खड़ी बोली ने किया। इसी खड़ी बोली को बना-संवार कर उर्दू ने एक उच्च स्थान हासिल किया। नारंग कहते थे कि मेरा ईमान है कि नये हिंदुस्तान को आज भी भावनात्मक एकता और सांस्कृतिक सूत्रबद्ध के लिए उर्दू की उतनी ही ज़रूरत है जितनी अंग्रेजी और हिन्दी की।

सलीम अहमद की यह बात बिल्कुल सच है, नारंग के व्यक्तित्व और कृतित्व में परंपरा और प्रगति का अद्भुत संगम है। इसी संगम के कारण वे किसी भी प्रकार के अतिवाद को स्वीकार नहीं करते। यह अलग बात है कि उनका प्रतिरोध नम्र और तार्किक है। उन्होंने उर्दू साहित्य में होने और आने वाले परिवर्तन का साथ दिया। अब प्रगतिशील मित्रों ने ऑइडियालॉजी के अनुकरण ही को अदब की संज्ञा दे दी तो वे आधुनिकतावादियों के आंदोलन में शामिल हो गये। इसका सबसे बडा प्रमाण उनका प्रसिद्ध तरक़्क़ीपसंद शाइर फ़ैज़ पर लिखा लेख है जिसका शीर्षक है फ़ैज़ को कैसे न पढ़ें। लेकिन जब आधुनिकता भी अपने अलिखित घोषणा-पत्र पर ज़ोर देने लगी और व्यक्तिवाद तथा आस्तित्ववादी अतिवाद को ही साहित्य मानने-मनवाने लगी तो उन्होंने उत्तर आधुनिकता का परिचय कराया। उनका मानना था कि हमारी (उर्दू की) उत्तर आधुनिकता किसी का चर्बा नहीं होगी। यह न सिर्फ पाश्चात्य से बल्कि पडौसी भारतीय भाषाओं से भी अलग पहचान रखेगी। इसका मिज़ाज बहुत कुछ उर्दू के अपने हालात और उर्दू की अपनी दाखिली ज़रूरतों की बिना पर तय पायेगा। निरी उत्तर आधुनिकता और उर्दू उत्तरआधुनिकता में फ़र्क करना जरूरी है।

नारंग जीवन पर्यंत उर्दू की अस्मिता की, अपने तर्कों से, भारतीय चिंतन से जोड़ते रहे और यह प्रमाणित करते रहे कि वह मात्र तथाकथित गंगा-जमनी संस्कृति का प्रतिनिधित्व ही नहीं करती बल्कि यह दर्शन और चिंतन की दृष्टि से भी भारतीय भाषा है।

एक दो बातों का और उल्लेख ज़रूरी है। उर्दू आलोचना में अलताफ़ हुसैन 'हाली' की किताब मुकद्दमा-ए-शेरो-शाइरी का वही स्थान है जो पाश्चात्य काव्य-शास्त्रों में 'पोएटिक्स' का है। यह हाली के अपने काव्य-संग्रह की भूमिका है, अलग से कोई किताब नहीं। कुछ आलोचकों को आज तक उसके इतने महत्वपूर्ण समझे जाने पर आश्चर्य है। यह किताब १८९३ में प्रकाशित हुई। उसके ठीक सौ बरस बाद नारंग की 'साख्तियात पस साख्तियात और मशरिक़ी शेरीयात' १९९३ में, जिसका हिन्दी अनुवाद 'संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद एवं प्राच्य काव्य-शास्त्र' के नाम से २००० ई. में प्रकाशित हुआ। इसके संबंध में उर्दू आलोचक महमूद हाशिमी का कहना है कि यह आधुनिक उर्दू आलोचना की लाल

किताब है। इस किताब की सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसमें प्राच्य काव्यशास्त्र की दृष्टि से उत्तरआधुनिकता पर विचार किया गया है। यहां इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि उर्दू में प्राच्य काव्य-शास्त्र अरबी एवं फारसी काव्य-शास्त्र रहा है। नारंग ने लगभग पहली बार इतने विस्तार से संस्कृत भाषा दर्शन की दृष्टि से उर्दू एवं उत्तर आधुनिक दार्शनिकों और विचारकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। यास्क, पाणिनी, पतंजलि, भरत, आनंदवर्धन, अभिनव गुप्त, मम्मट आदि के अलावा बुद्ध, नागार्जुन, शून्यवाद, अपोह सिद्धांत आदि की स्थापनाओं से उत्तर आधुनिकता का भारतीय परंपरा के परिपेक्ष्य में समझने-समझाने का प्रयास किया है जिसे एक प्रशंसनीय क़दम माना गया। हालांकि अरबी एवं फारसी काव्य-परंपरा के प्रेमियों ने इसका निरोध भी किया लेकिन अंततः उन्हें खामोश हो जाना पड़ा।

प्रो. नारंग ने उर्दू की भारतीयता को प्रमाणित करने के लिए जो सराहनीय प्रयास किए उनमें से कुछ किताबों के नाम इस तरह है: 'अमीर खुसरो का हिंदवी कलाम', 'उर्दू ग़ज़ल एवं भारतीय मानस व संस्कृति', 'भारतीय लोक कथाओं पर आधारित 'उर्दू मस्नवियां'। संरचनावाद वाली पुस्तक जिसका अभी ज़िक्र हुआ, और ग़ालिब आदि।

नारंग जीवन पर्यंत उर्दू की अस्मिता की, अपने तर्कों से, भारतीय चिंतन से जोड़ते रहे और यह प्रमाणित करते रहे कि वह मात्र तथाकथित गंगा-जमनी संस्कृति का प्रतिनिधित्व ही नहीं करती बल्कि यह दर्शन और चिंतन की दृष्टि से भी भारतीय भाषा है। इस संदर्भ में उनकी किताब ग़ालिब: अर्थक्ता, रचनात्मकता एवं शून्यता जो उर्दू में 'ग़ालिब: मानी आफ़रीनी, जदलीयाती वज्अ, शून्यता और शेरीयात का अनुवाद है विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

उर्दू दुनिया में नारंग जैसा कोई साहित्यकार शायद ही होगा जिसे इतनी सराहना, उलाहना, और प्रसिद्धि मिली हो। वे साहित्य अकादमी और भरत के समस्त विश्वविद्यालयों के उर्दू विभागों के बीच पल की तरह थे। हर नये लेखक को आगे बढ़ने का अवसर देते थे। विभाजन के बाद उन्होंने जिस तरह का संघर्षपूर्ण जीवन बिताया संभवतः यह उसी का प्रभाव था कि हर संघर्ष करने वाले के साथ उनका रवैया सहनुभूतिपूर्ण रहता था। जहां तक उनके कामों की सराहना का प्रश्न है, नारंग उर्दू दुनिया के एकमात्र ऐसे साहित्यकार थे जिन्हें हिंदुस्तान और पाकिस्तान, दोनों विरोधी राष्ट्रों के राष्ट्रप्रमुखों यानी राष्ट्रपतियों ने सम्मानित किया। ऐसे प्रतिभाशाली एवं सम्मानित विद्वान का विरोध और उसे विवादास्पद बनाने का प्रयास न हो यह तो असंभव था। इसलिए क़दम क़दम पर उनके कृतित्व को अविश्वसनीय और व्यक्तित्व को विवादित बनाने के प्रयास भी हुए। लेकिन वे हर मोर्चेपर डेट रहे।

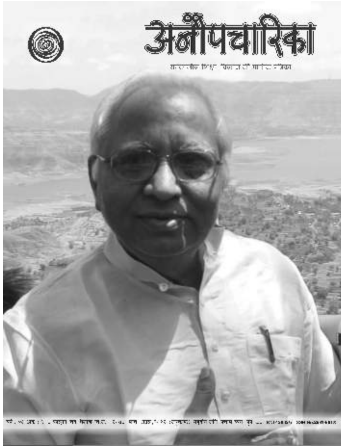
प्रो. अतीकउल्लाह ने उनकी मौत पर लिखा कि प्रो. नारंग उर्दू की अदबी तारीख का पूरा अध्याय हैं। वे हमारे युग के ऐसे पौराणिक पुरुष हैं जिन्हें हमने अपनी आँखों से ज़िंदा देखा है। जाने कितनी नस्लों को उन जैसे व्यक्ति की प्रतीक्षा करनी होगी।' ❑

कल्लों की गली, जोधपुर-३४२००१

मैं स्पष्ट रूप में यह जरूर देख और समझ सकता हूं कि यद्यपि मेरे आसपास प्रत्येक वस्तु निरंतर बदलती, निरंतर नष्ट होती रहती है। फिर भी इस परिवर्तन के पीछे ऐसी एक सजीव, चेतन शक्ति है, जो कभी नहीं बदलती, जो सबको एकता के सूत्र में बांधे रखती है, जो सृजन करती है, नाश करती है और पुनः नवसृजन करती है। यह घट घट में बसी हुई चेतन शक्ति या तत्व ही ईश्वर है। ऐसी कोई वस्तु, जिसे मैं केवल इंद्रियों से देखता हूं और अनुभव करता हूं, शाश्वत नहीं हो सकती या नहीं होगी; इसलिए एकमात्र ईश्वर की ही सत्ता शाश्वत है। और, यह कल्याणकारी है या अकल्याण करने वाली? मैं तो इसे शुद्ध कल्याणकारी शक्ति के रूप में ही देखता हूं, क्योंकि मैं देख सकता हूं कि मृत्यु के बीच जीवन का अस्तित्व बना राहत है, असत्य के बीच सत्य टिका रहता है और अंधकार के बीच प्रकाश जीवित राहत है। इसलिए मैं इस निर्णय पर पहुंचता हूं कि ईश्वर जीवन है, सत्य है, प्रकाश है। वह प्रेम है, वह सर्वोच्च शिव है-शुभ है।❑

महात्मा गांधी

(नवजीवन/ १९५९)



पुणे से अरविन्द गुप्ता

बहुत सुन्दर अंक है! रमेश भाई को वाकई में हार्दिक श्रद्धांजलि है! आपने अपना दिल उंडेल कर इस अंक को निकाला है। बहुत बहुत आभार। ❑

जोधपुर से अशोक चौधरी

अनौपचारिका के मार्च-अप्रेल, २०२२ संयुक्तांक का अध्ययन किया। श्रद्धेय रमेश थानवी जी के जीवन पर आधारित यह अंक बहुत प्रिय लगा।

इस अंक में प्रकाशित सभी लेख थानवी जी के जीवन प्रसंगों के माध्यम से उनका जीवन वृत्त हमारे सामने लाते हैं। ❑

कोटा से भगवती प्रसाद गौतम

बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धनी रमेश थानवी साहब को समर्पित 'अनौपचारिका' का संयुक्तांक (मार्च-अप्रेल २०२२) मई के अंतिम सप्ताह में मिला। हालांकि सच है कि थानवी जी लौटकर अब नहीं आएंगे, पर सच यह भी है कि वे मन से कभी जाएंगे भी नहीं। इस श्रमसाध्य एवं श्लाघनीय विशेषांक से आद्योपांत गुजरने के बाद ही एहसास हुआ कि मैं जितना उन्हें जान पाया, वह तो शतांश भी नहीं है। इस अंक ने उनके सोच व जीवन के न जाने कितने पन्ने ही बेबाक तरीके से परोस दिए। क्या-क्या और किस-किस लेख-आलेख के जरिए उनके बारे में कहा जाए, बहुत मुश्किल है यह सब शब्दों में समेटना।

ऐसे ही संस्मरणों, आलेखों, गतिविधियों के रूप में और भी काफी-कुछ। सहज सार्थक मुखावरण तथा समिति समाचार के अलावा थानवी जी के सृजनात्मक चिंतन, जीवन यात्रा की स्मृतियों और उनकी इंद्रधनुषी झलकियों की वजह से भी इस अंक का समग्र कलेवर स्तरीय और संग्रहणीय बन पड़ा है।

अनौपचारिका परिवार के इस अद्भुत, असाधारण और अभिनंदनीय श्रम-परिश्रम के लिए हार्दिक साधुवाद एवं शुभकामनाओं के साथ....।❑

जयपुर से आर.सी.भंडारी

यह अंक स्व. रमेश थानवी जी के स्मरणाजंली के रूप में प्रकाशित किया गया है। इसके लिए सभी संबंधित सहयोगियों को बधाई एवं साधुवाद। श्री थानवी के व्यक्तित्व और कृतित्वके लिए उनके प्रशसंकों और चाहने वालों ने जो भी विचारों को लेखों के रूप में शब्दांकित किये हैं, उनसे लगा कि थानवी जी का सम्पूर्ण जीवन एक खुली किताब रहा है। जिसमे हर पेज पर केवल कुछ न कुछ 'देना' ही 'देना' लिखा है। तथा 'लेना' तो ढूंढना पड़ेगा। क्योंकि लेने से तो उन्होंने किनारा कर दिया था। पक्के अपरिग्रहवादी जो थे। एक महान वैज्ञानिक ने कहा था कि मनुष्य संसार में क्या है ? यह महत्व नहीं रखता, वह क्या था यही महत्वपूर्ण होता है। वर्तमान अंक ने इस कथन की, हमारे विचार से, पुष्टि कर दी है।

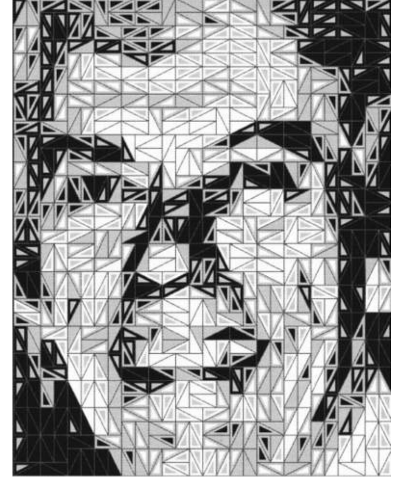
इसी प्रकार एक जैन आचार्य संत ने कहा था कि मनुष्य वस्तु-निष्ठता से बड़ा नहीं होता, उसकी वस्तु-निष्ठता तो मात्र दिखावा ही होता है। मनुष्य का बड़ापन और बड़प्पन उसकी कर्म-निष्ठता, गुण-निष्ठता तथा भाव-निष्ठता से होता है।

संयुक्तांक का आवरण चित्र बड़ा ही आकर्षक एवं जीवन्त सा है। लगता है थानवी जी के जीवन सफरनामे के महा समुद्र से कोई अनमोल वाक्य छलकने वाला ही है। ❑

कंप्यूटर कला और एनिमेशन के जनक केन नोल्टन का निधन



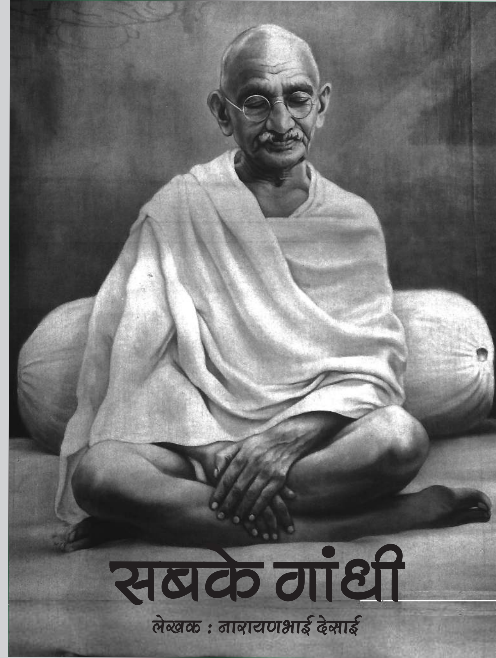
कंप्यूटर ग्राफिक्स के विज्ञान और कला के जनक इंजीनियर, कंप्यूटर वैज्ञानिक और कलाकार, केन नोल्टन जिन्होंने पहले कंप्यूटरजनित चित्र और चलचित्र बनाये, का १६ जून को अमरीका के फ्लोरिडा के सरसोटा में निधन हो गया। वे ६१ वर्ष के थे। उन्होंने कंप्यूटर एनीमेशन के लिए पहली कंप्यूटर प्रोग्रामिंग भाषा विकसित की, जिसे बेफलिक्स (बेल लैब्स फ्लिक्स का संक्षिप्त रूप) कहा जाता है।उन्होंने और उनके सहयोगियों ने जल्दी ही इसे अन्य उपकरणों और तकनीकों के साथ ऐसे बदल दिया कि अंततः फिल्म व्यवसाय ही बदल गया।



वर्ष १९९५ में, उत्तरी कैलिफोर्निया के एक स्टूडियो पिक्सर में ने टॉय स्टोरी रिलीज़ की, जो एक ऐसी फीचर फिल्म थी, जिसकी छवियां पूरी तरह से कंप्यूटर द्वारा बनाई गई थीं।अब तो कंप्यूटर जनित इमेजरी, या सीजीआई, व्यावहारिक रूप से हर फिल्म और टेलीविजन शो में एक भूमिका निभाती है।

तकनीकी अनुसंधान से २००८ में सेवानिवृत्त होने के बाद वे एक जादूगर और आविष्कारक मार्क सेतेदुकाती के साथ जी गा ज़ो नामक एक पहेली (जिगशॉ पज़ल) बनाने में लग गये जिसे व्यवस्थित करके ऐसा बनाया जा सकता था कि वह किसी का चेहरा लगे। सेतेदुकातीने उनके निधन पर कहा कि नोल्टन के पास सौंदर्यशास्त्र की महान भावना वाला गणितीय मस्तिष्क था। ❑

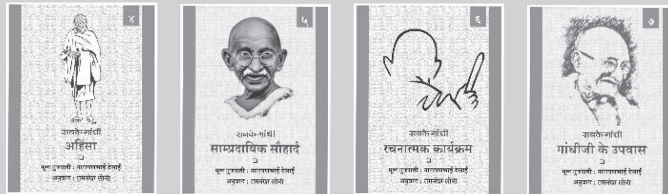
स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा ७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४ से प्रकाशित। संपादक-श्री राजेन्द्र बोड़ा

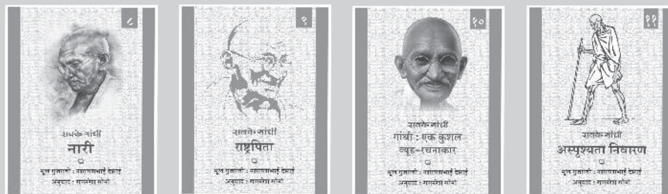




सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C.Code : BARB0EXTNEH
(fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct,No. 9815010002077



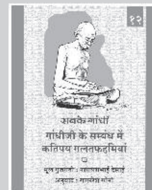




सबके गांधी



राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004





राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर–302004

१२ पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रूपये ५०० मात्र/– डाक खर्च अलग से देय होगा।